अमर उजाला

नई दिल्ली ■ सोमवार, 29 जुलाई 2024

प्रवाह

महोत्सव विश्वास का 75

निर्भीक पत्रकारिता का आठवां दशक
स्थापना वर्ष : 1948

जब धर्म और राजनीति एक ही गाड़ी में सवार होते हैं, तो बवंडर आना स्वाभाविक है। -फ्रैंक हरबर्ट

दिल्ली के ओल्ड राजेंद्र नगर स्थित एक बड़े कोचिंग संस्थान में पानी भरने से हुए हादसे ने एक बार फिर कोचिंग संस्थानों और व्यवस्था की लापरवाही को तो उजागर किया ही है, यह सवाल भी उठाया है कि अपने सपनों का पीछा करने के लिए निकले होनहारों को सुरक्षित माहौल देना आखिर किसकी जिम्मेदारी है?

जिम्मेदार कौन

दिल्ली में शनिवार शाम को हुई तेज बारिश के चलते ओल्ड राजेंद्र नगर के एक बड़े कोचिंग संस्थान के बेसमेंट स्थित पुस्तकालय में एकाएक पानी भर जाने से तीन विद्यार्थियों की दर्दनाक मौत वाकई एक झकझोर देने वाली दुर्घटना है, जो रेखांकित करती है कि शहरों के अनियंत्रित निर्माण और उचित सुरक्षा मानकों की अनदेखी कैसे गंभीर परिणामों को जन्म दे सकती है। दरअसल, जिस वक्त बेसमेंट में पानी भरना शुरू हुआ, उस समय पुस्तकालय में 30-35 छात्र-छात्राएं मौजूद थे। पानी भरता देख ज्यादातर विद्यार्थी तो बाहर निकल गए, लेकिन कुछ भीतर ही रह गए, जिनकी डूबने से मौत हो गई। चूंकि कुछ ही दिन पहले पटेल नगर में सिविल सेवा परीक्षाओं की तैयारी कर रहे छात्र की बारिश में करंट लगने से मौत हुई थी, इसलिए ऐसी किसी भी आशंका के मद्देनजर इलाके की बिजली काट दी गई थी। अंधेरा होने और बेसमेंट में भरे पानी के गंदे होने की वजह से भी बचाव कार्य में काफी दिक्कतें आ रही थीं। यह दुर्घटना राजधानी में नालों की सफाई के दावों की पोल तो खोलती ही है, कोचिंग संस्थानों की लापरवाही की ओर भी इशारा करती है। गौरतलब है कि राष्ट्रीय राजधानी में भवन उपनियमों के अनुसार, बेसमेंट में व्यावसायिक गतिविधि अवैध है और इन नियमों का अनुपालन कराना दिल्ली नगर निगम की मुख्य जिम्मेदारियों में से एक है। उल्लेखनीय है कि पिछले साल जून में दिल्ली में ही मुखर्जी नगर स्थित एक इमारत में आग लगी थी और छात्रों को रस्सी से लटककर अपनी जान बचानी पड़ी थी, तब भी स्थानीय प्रशासन के साथ कोचिंग प्रबंधन की लापरवाही सामने आई थी। दरअसल, दिल्ली में कोचिंग संस्थानों का गढ़ माने जाने वाले इलाकों की बहुमंजिला इमारतें, संकरी सीढ़ियां, क्षमता से ज्यादा छात्र, प्रवेश व निकासी की संकरी व्यवस्था इत्यादि दुर्घटनाओं को आमंत्रण देते रहते हैं। बात सिर्फ दिल्ली की नहीं है, विभिन्न प्रतियोगी परीक्षाओं

की तैयारी के लिए विख्यात कोटा शहर की हालत भी कोई बहुत अच्छी नहीं है। आए दिन वहां छात्रों की आत्महत्या की खबरें तो मिलती ही हैं, देश भर के कोचिंग संस्थानों से ये शिकायतें भी मिलती रही हैं कि वहां नियमित जांच और सुरक्षा मानकों पर ध्यान नहीं दिया जाता। देश में कोचिंग व्यवस्था समानांतर संस्थानों की तरह विकसित हो रही है। ऐसे में, वहां जाने वाले होनहार युवा सुरक्षित व स्वस्थ माहौल में अपना भविष्य बना सकें, इसके लिए जरूरी है कि प्रशासन नियमों का उल्लंघन करने वालों पर कड़ी कार्रवाई करे और छात्रों व अभिभावकों को भी जागरूक रहते हुए केवल उन्हीं संस्थानों में प्रवेश लेना चाहिए, जो सभी सुरक्षा मानकों का पालन करते हों।

भोजन का मजहब और राजनीति

सबकी अपनी-अपनी आस्थाएं होती हैं, भोजन की प्राथमिकताएं होती हैं। क्या खाना है, क्या नहीं, यह निर्णय करने का भी सभी को अधिकार है। इसमें राजनीति की कोई गुंजाइश नहीं होनी चाहिए। बेहतर होगा कि इस मामले में संतुलित ढंग से विचार किया जाए।

गत शुक्रवार (26 जुलाई) को सर्वोच्च न्यायालय ने कांवड़ मार्ग पर नामपट्टिका संबंधित आदेश पर रोक को आगामी पांच अगस्त तक के लिए बढ़ा दिया है। इस मुद्दे के तीन पहलू सामने आए हैं। पहला-यह उपभोक्ताओं के जानने के अधिकार से जुड़ा है। दूसरा-कानून-व्यवस्था को बनाए रखना राज्य का दायित्व है और वह भंग न हो, उसकी जिम्मेदारी शासन-प्रशासन की है। तीसरा-यह कोई नई व्यवस्था नहीं है, अपितु पहले से स्थापित कानून-नियम के अनुरूप है। परंतु राजनीति से प्रेरित बहस ने इस विषय को 'हिंदू-मुसलमान' बना दिया। यह दिलचस्प है कि इस निर्णय का मुखर विरोध करने वाला राजनीतिक वर्ग वही है, जो लोकसभा चुनाव में बारंबार प्रचार कर रहा था कि सत्तासीन होने पर घर-घर जाकर लोगों से नाम के साथ उनकी जाति भी पूछेगा।

बलबीर पुंज
भाजपा के पूर्व उपाध्यक्ष और पूर्व राज्यसभा सदस्य

प्रश्न यह है कि देश के विभिन्न मतावलंबियों को अपनी आस्था के अनुरूप भोजन चुनने का अधिकार है या नहीं? यहूदी समाज में 'कोशर' की मान्यता है। इसमें खाद्य उत्पादों को लेकर मजहबी नियम है। इनके समुदाय में केवल खाना ही नहीं, अपितु भोजन का स्थान भी 'कोशर' होना चाहिए। इसी तरह, इस्लाम में 'हलाल' की अवधारणा है, जिसका अर्थ वैध है। मुसलमानों के लिए शूकर का मांस 'हराम' है। यही कारण है कि जब मुस्लिम समाज में ईद या फिर मुहर्रम का पर्व होता है, तो उनकी मजहबी आस्था का सम्मान करते हुए यातायात परिचालन तक में अस्थायी तौर पर उचित परिवर्तन किए जाते हैं।

हिंदू समाज में कांवड़ यात्रा कई किलोमीटर चलने वाली, एक कठिन तीर्थयात्रा है। कुछ कांवड़िए 'डाक कांवड़' भी लाते हैं। इसमें गंगाजल से भरे कांवड़ को बिना जमीन पर रखे भगवान शिव की मूर्ति या शिवलिंग को अर्पित करने और 'सात्विक भोजन' ग्रहण करने की मान्यता है। करोड़ों हिंदू पवित्र दिनों में तामसिक खाद्य वस्तुओं, जैसे प्याज-लहसुन आदि के साथ साधारण नमक तक का सेवन भी नहीं करते हैं। इतना ही नहीं, नवरात्र के पवित्र दिनों में यदि कोई गैर-मजहबी कार्यक्रम का आयोजन किया जाता है, तब चाहे नवरात्र के व्रत रखने वाले सीमित हों, उनके खाने-पीने के लिए अलग से विशेष व्यवस्था की जाती है। जिस दिशानिर्देश पर विवाद हुआ, उसमें कहीं भी यह नहीं लिखा था कि कोई गैर-हिंदू कांवड़ यात्रा के मार्गों पर अपनी दुकान-ढाबा-ठेला आदि (मांस विक्रेताओं को छोड़कर) नहीं लगा सकता। इस आदेश के अनुसार, प्रत्येक दुकानदार-ढाबा संचालक, चाहे वह किसी भी मजहब का हो, उसे अपने वास्तविक नाम की पट्टी लगानी थी। इस शासनादेश की एक पृष्ठभूमि भी है।

कई गैर-हिंदू अपनी वास्तविक पहचान छिपाकर देवी-देवताओं आदि के नामों पर खाद्य-पेय दुकानों, ढाबों का संचालन करते हैं। आखिर अपनी असली पहचान छिपाने और गलत पहचान बताने के पीछे क्या मंशा हो सकती है? यहां बात केवल उपभोक्ता को धोखा देने तक सीमित नहीं है। इस छल के खुलने पर तीर्थयात्रियों की आस्था पर कुठाराघात की बात उठने पर छोटी-सी घटना भी दंगे का रूप ले सकती है। इस आशंका को निरस्त करने तथा कानून-व्यवस्था और सांप्रदायिक सौहार्द को बनाए रखने हेतु दुकानों-ढाबों आदि पर नामपट्टिका लगाने का आदेश बताया गया था।

उपभोक्ताओं के अधिकार की रक्षा करने हेतु देश में पहले से विनियमन हैं। वर्ष 2005 से जारी 'जागो ग्राहक जागो' रूपी केंद्रीय उपभोक्ता जागरूकता कार्यक्रम के साथ वर्ष 2006 में पारित 'खाद्य सुरक्षा मानक अधिनियम' और वर्ष 2011 में लागू 'खाद्य सुरक्षा मानक प्राधिकरण' से उपभोक्ताओं के जानने के अधिकार की रक्षा की जा रही है। इन कानूनों के अनुसार, खाद्य परिसरों में सभी प्रतिष्ठानों को लाइसेंस/पंजीकरण संख्या प्रदर्शित करना अनिवार्य है, जिसमें धारक के नाम का भी उल्लेख होता है। रेलवे स्टेशनों पर पंजीकृत विक्रेता और टैक्सी-ऑटो के मालिक-चालक अपना विवरण प्रदर्शित करते हैं। अधिकतर ऑनलाइन एप में भोजन-दवा-राशन आदि वस्तुओं का वितरण करने वालों का नाम उपभोक्ताओं को दिखता है। कांवड़ संबंधित मामले में सुनवाई करते हुए शीर्ष अदालत ने भी उपभोक्ताओं के अधिकारों से जुड़े कानूनों की देश भर में अनुपालना पर बल दिया है।

जब नामपट्टिका का मामला सामने आया, तब मेरे समक्ष नाना प्रकार के विचार आए। उसमें 'सात्विक भोजन' की पवित्रता से भी जुड़ा विचार था। मुझसे कहा गया कि मुस्लिम समुदाय में 'हलाल' और यहूदी समाज में 'कोशर' की भांति सनातन परंपरा में 'सात्विक' की कोई निश्चित परिभाषा नहीं है और 'सात्विक भोजन' करने वाले हिंदुओं की संख्या बहुत कम है। ऐसा कहने वाले या तो भारतीय संस्कृति को नहीं समझते या पूर्वाग्रह के शिकार हैं। मूलतः सनातन संस्कृति में एकरूपता के बजाय समरसता का दर्शन है। एकेश्वरवादी मजहबों के प्रतिकूल इसमें 'सह-अस्तित्व' की भावना है। प्रत्येक सनातनी को अपने देवी-देवता को चुनने, उनकी आराधना करने और उनसे आध्यात्मिक पूर्ति करने की स्वीकृति है। अपने बहुलतावादी चिंतन के अनुरूप सनातन में 'सात्विक भोजन' को परिभाषित करने हेतु कोई संकीर्ण इकाई नहीं है। यह एक सनातनी पर निर्भर करता है कि उसके लिए 'सात्विक' क्या है। मेरा मत है कि देश में यदि एक भी हिंदू, मुस्लिम या यहूदी अपनी मजहबी आस्था के अनुरूप भोजन करना चाहता है, तो उसकी पूर्ति करने का दायित्व हमारी सांविधानिक-शासकीय व्यवस्था के साथ सभ्य समाज का भी है।

कौन-सा खाद्य उत्पाद मुसलमानों की मजहबी मान्यताओं के अनुरूप है, उसे निर्धारित करने के लिए वर्षों से निजी संस्थाओं द्वारा 'हलाल' प्रमाणपत्र जारी हो रहे हैं। इसी तरह, अन्य आस्थाओं के अनुरूप भोजन आवश्यकतानुसार उपलब्ध होते हैं। वैसे ही कांवड़ियों के 'भोजन चुनने के अधिकार' को लिया जाना चाहिए। उसे सांप्रदायिक विवाद का मुद्दा बनाने का कोई औचित्य नहीं है।

edit@amarujala.com

जीवन धारा

दलाई लामा

हम यहां करीब सौ वर्षों के लिए हैं। इस अवधि के दौरान हमें अपने जीवन में कुछ अच्छा व उपयोगी करने का प्रयास करना चाहिए। दूसरों के प्रति दरियादिली दिखाएं और उनका भला करें।

दूसरों की खुशी में साथ देने पर मिलेगा जीवन का अर्थ

हर दिन सुबह उठते ही सोचें कि मैं भाग्यशाली हूं कि आज मैं जीवित हूं, मेरे पास एक अनमोल जीवन है और मैं इसे बर्बाद नहीं करने वाला हूं। मैं अपनी सारी ऊर्जा खुद को विकसित करने, दूसरों के प्रति दरियादिली दिखाने और सभी प्राणियों के लाभ के लिए ज्ञान पाने में उपयोग करने वाला हूं। मैं दूसरों पर न तो गुस्सा करूंगा और न ही उनके बारे में बुरा सोचूंगा। जितना हो सकेगा, दूसरों का भला करूंगा। जब तक हम अपने आप में शांति नहीं हासिल कर लेते, तब तक हम बाहरी दुनिया में शांति प्राप्त नहीं कर सकते। आपने बच्चों को देखा होगा, बेशक वे आपस में झगड़ते हैं, लेकिन आम तौर पर वे वयस्कों की तरह मन में बुरी भावनाएं देर तक नहीं पालते। वयस्क अगर अंदर ही अंदर नकारात्मक भावनाओं को छिपाते हुए बड़ी मुस्कान दिखाते हैं, तो शिक्षा का क्या फायदा? बच्चे आमतौर पर इस तरह से व्यवहार नहीं करते। अगर उन्हें किसी पर गुस्सा आता है, तो वे उसे तुरंत व्यक्त करते हैं, और फिर बात खत्म हो जाती है। वे अगले दिन भी उसके साथ खेल सकते हैं। हमें सोचना चाहिए कि हम इस ग्रह पर आगंतुक हैं। हम यहां करीब सौ वर्षों के लिए हैं। इस अवधि के दौरान हमें अपने जीवन में कुछ अच्छा व उपयोगी करने का प्रयास करना चाहिए। यदि आप दूसरों की खुशी में योगदान देते हैं, तो आपको जीवन का सही अर्थ मिलेगा। समय बहुत जल्दी बीत जाता है और यह सोचने पर मजबूर करता है कि हमने अपने समय का सही इस्तेमाल किया या नहीं। समय का सही इस्तेमाल बहुत जरूरी है। जब तक हमारे पास यह शरीर है, और खास तौर पर यह अद्भुत मानव मस्तिष्क है, हमारा हर मिनट कीमती है। हमारा रोजमर्रा का जीवन आशा से भरा हुआ है, लेकिन भविष्य की कोई गारंटी नहीं है। इस बात की कोई गारंटी नहीं है कि कल इस समय हम यहां होंगे। लेकिन हम पूरी तरह से उम्मीद के साथ इसके लिए काम कर रहे हैं। इसलिए, हमें अपने समय का सबसे अच्छा इस्तेमाल करने की जरूरत है। मेरा मानना है कि समय का सही इस्तेमाल यह है कि दूसरे लोगों, दूसरे संवेदनशील प्राणियों की सेवा करें। अगर नहीं कर सकते, तो कम से कम उन्हें नुकसान पहुंचाने से बचें। हमेशा याद रखें कि जहां भी आपके मित्र हों, वह आपका देश है, और जहां भी आपको प्रेम मिले, वह आपका घर है। जब आप सांस अंदर लें, तो खुद को संजोएं। जब आप सांस बाहर छोड़ें, तो सभी प्राणियों को संजोएं। हमारे जीवन का उद्देश्य खुशी की तलाश करना है। अगर मैं सिर्फ अपने लिए खुश हूं, तो खुश रहने के मौके बहुत कम हो जाएंगे। अगर मैं दूसरों के लिए अच्छी चीजें होने पर खुश हूं, तो खुश रहने के मौके अरबों गुना बढ़ जाएंगे। अपनी क्षमता को पहचानकर और अपनी योग्यता में आत्मविश्वास रखकर व्यक्ति एक बेहतर विश्व का निर्माण कर सकता है। जिस पर्यावरण में हम सभी रहते हैं, उसका संरक्षण और उसकी देखभाल करना हमारी सामूहिक और व्यक्तिगत जिम्मेदारी है।

जीवन का आनंद लें

सूत्र

मनुष्य पैसा कमाने के लिए स्वास्थ्य गंवाता है। फिर वह स्वस्थ होने के लिए पैसे खर्च करता है। और फिर वह भविष्य के बारे में इतना चिंतित हो जाता है कि वर्तमान का आनंद नहीं ले पाता। नतीजतन वह न तो वर्तमान में जीता है और न ही भविष्य में। वह ऐसे जीता है, जैसे कभी मरने वाला ही नहीं है, और फिर वास्तविक जीवन जिए बिना ही मर जाता है।

दूसरा पहलू

सोशल मीडिया पर प्रोत्साहित होकर कई अमेरिकी एक चिकित्सकीय कदम के रूप में खुद को अपने परिवारों से अलग कर रहे हैं।

क्या परिवार से रिश्ते खत्म करना अच्छा उपचार है?

वह अपने कॉलेज के द्वितीय वर्ष के दिनों में संघर्ष कर रही थी, जेनजेन ने थेरेपी में कई घंटे बिताए, लेकिन उसने अपने जीवन के मुख्य तनाव, जिसका कारण उसके माता-पिता थे, की ओर कभी ध्यान नहीं दिया। वह बताती है कि माता-पिता ने मिडवेस्टर्न यूनिवर्सिटी कैंपस में उसे बार-बार बुलाया और उस पर अपनी उम्मीदें थोपने का प्रयास किया। वे चाहते थे कि वह बिजनेस की पढ़ाई के बाद चीन लौटकर अमीर आदमी से शादी कर बच्चे पैदा करे। उसने उन्हें वापस जाने के लिए कहा, तो पिता चिल्लाए और मां रोने लगी। जेनजेन ने बताया कि बढ़ते दबाव की वजह से उसका काम करना कठिन हो गया था। हालांकि खुदकुशी के विचारों को त्याग दिया था।

एलेन बैरी

तेहान के वीडियो ने उसे नए विचार से परिचित कराया कि बचपन के आघातों से उबरने के लिए झगड़ालू माता-पिता से 'संपर्क खत्म कर लो'।

उसने सोचा कि इस बारे में चिकित्सक को बताएंगे, तो वह सुलह की सलाह देंगे और मेरी समस्या को माता-पिता के नजरिये से देखेंगे। इसी दौरान उसे सोशल वर्कर पैट्रिक तेहान के बारे में पता चला, जिसके यूट्यूब पर कई फॉलोअर थे। तेहान के वीडियो ने उसे नए विचार से परिचित कराया कि बचपन के आघातों से उबरने के लिए झगड़ालू माता-पिता से 'संपर्क खत्म कर लो'। तेहान की वेबसाइट पर एक 'टॉक्सिक फैमिली टेस्ट' होता है। वह परिवार से दूरी बनाने के लिए पत्र लिखने का तरीका बताता है। वह सलाह देता है, 'मैं परिवार से संबंध तोड़ रहा हूं और पारिवारिक कलह से निजात पाना चाहता हूं।' वह यह सलाह मुफ्त नहीं देता। वह 900 डॉलर फीस लेकर हीलिंग समुदाय में शामिल करता है। 47 वर्षीय तेहान युवाओं को बताता है कि वह जब 17 वर्ष का था, तब उसने पारिवारिक कलह की वजह से अपने माता-पिता को छोड़ दिया था। उसके पिता का निधन हो गया है, वह अपनी शराबी मां के पास भी नहीं जाना चाहता है। जेनजेन को तेहान की वेबसाइट के जरिये उसके जैसे अन्य लोग भी मिले। इन सबका कहना है कि माता-पिता से दूरी बनाकर उन्होंने एक तरह से अपनी जान बचाई है।

कॉर्नेल समाजशास्त्री कार्ल पिल्मर के अध्ययन के मुताबिक, 27 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने अपने परिवार से दूरी बना ली थी। अनुमान हैं कि राष्ट्रीय स्तर पर यह आंकड़ा 6.7 करोड़ हो सकता है।

अमेरिका में परिवार से अलग हो रहे नौजवानों का अधिकृत डाटा निकालना तो मुश्किल है, लेकिन कॉर्नेल समाजशास्त्री कार्ल पिल्मर के अध्ययन के मुताबिक, 27 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने अपने परिवार से दूरी बना ली थी। अनुमान है कि राष्ट्रीय स्तर पर यह आंकड़ा 6.7 करोड़ हो सकता है। उन्होंने यह शोध 20 वर्ष से अधिक की उम्र के युवाओं पर किया। माता-पिता से बच्चों के अलग होने की प्रवृत्ति को सोशल मीडिया, विशेषकर टिकटॉक बढ़ावा दे रहा है।

©The New York Times 2024

आंकड़े

आर्थिक सहायता

भारत ने इस साल बजट में मालदीव, म्यांमार और भूटान का बजट कम कर दिया है, जबकि नेपाल, मॉरीशस और श्रीलंका का बढ़ाया है।

भूटान	2068.56 (-330.4)
नेपाल	700 (+50.0)
मालदीव	400 (-370.9)
मॉरीशस	370 (+40.0)
म्यांमार	250 (-120.0)
श्रीलंका	245 (+185)

आंकड़े करोड़ रुपये में हैं। कोष्ठक में बजट कम-ज्यादा करने के आंकड़े। | स्रोत : Budget

एक धर्मात्मा राजा ने नरक के प्राणियों के आग्रह पर उनकी शांति के लिए धर्मराज और इंद्रदेव के स्वर्ग के प्रस्ताव को भी ठुकरा दिया था।

राजा के पुण्य का प्रभाव

एक धर्मात्मा राजा थे। मृत्यु होने पर यमदूत उन्हें अपने साथ ले गए। पूर्व काल में किए एक पाप की उनकी सजा सिर्फ इतनी थी कि उन्हें नरक में ले जाकर लौट आना था। यमदूत नरक में ले गए, तो वहां के प्राणियों की चीत्कार से राजा का दिल दहल गया। इसके बाद राजा को स्वर्ग लेकर चलने लगे, तो नरक के प्राणियों ने यमदूतों से आग्रह किया कि राजा को कुछ समय यहां पर और ठहरने दीजिए। इनसे टकराकर जो हवा हमें स्पर्श कर रही है, उससे बड़ी ही शांति मिल रही है।

राजा ने पूछा, 'इनको मेरे शरीर से टकराने वाली हवा से शांति क्यों मिल रही है।' यमदूतों ने कहा कि आपके पूर्व में किए गए पुण्य कर्मों की वजह से इनके पाप क्षीण हो रहे हैं। राजा ने यमदूतों से कहा, 'यदि मेरी वजह से इतने सारे जीवों को सुख मिल रहा है, तो मैं यहीं रुकने के लिए तैयार हूं।' यमदूत बोले-'राजन आप चलिए। देखिए आपको लेने के लिए स्वयं धर्मराज और इंद्रदेव आए हैं।'

अंतर्यात्रा
संकलित

राजा ने धर्मराज व इंद्रदेव से कहा, 'मैं स्वर्ग जाने के बजाय यहीं पर ठीक हूं।' इंद्र ने कहा कि ये लोग अपने कर्मों का फल भोग रहे हैं। आप हमारे साथ चलें। राजा ने कहा, 'मेरे लिए दूसरों को शांति पहुंचाना, स्वर्ग के सुख से ज्यादा महत्वपूर्ण है।' इंद्र ने कहा कि हे राजन, इससे तुम्हारे पुण्य और बढ़ गए हैं, इन्हीं के प्रभाव से ये नरकगामी भी सद्गति को प्राप्त होंगे। इसके बाद राजा उनके साथ स्वर्गलोक चले गए।

अमर उजाला

पुराने पन्नों से — 06 अक्तूबर, 1956

स्वेज नहर के लिए वार्ता समिति में भारत को लेना तय

स्वेज नहर के लिये वार्ता समिति का निर्माण हो, अमरीका का सुझाव
समिति में भारत को लिया जाना तय
१५ ग्रामीणों की दर्दनाक हत्या

अमेरिकी विदेश मंत्री फास्टर डलेस पर जहाज कंपनियां दबाव डाल रही हैं कि अमेरिका ऐसा कोई कदम न उठाए, जिससे मिस्र और उसके संबंध बिगड़ें। माना जा रहा है कि वार्ता समिति में भारत को लिया जाना तय है।

युद्ध की आग कब बुझेगी

इस्राइल की दीर्घकालिक सुरक्षा और शांति के लिए बातचीत और कूटनीति के जरिये फलस्तीनियों के साथ शांति के अलावा कोई विकल्प नहीं।

सुरेंद्र कुमार, पूर्व राजदूत | अंतरराष्ट्रीय

बीते वर्ष सात अक्तूबर को हमास ने इस्राइल पर जो हमला किया, वह एक अक्षम्य और जघन्य अपराध था। उस हमले में 1200 से ज्यादा इस्राइली नागरिकों की क्रूरतापूर्वक हत्या कर दी गई और 200 से ज्यादा लोगों को बंधक बना लिया गया था। हमास ने जिस बर्बरतापूर्ण कार्रवाई को अंजाम दिया, उसका बचाव नहीं किया जा सकता। इस्राइल पर हमास के हमले की जितनी भी निंदा की जाए, वह कम है। ऐसे में हमास को दंडित करने की इस्राइल की इच्छा और उसके गुस्से को समझा जा सकता है।

हमास को दंडित करने के लिए इस्राइल की ओर से गाजा में की जा रही कार्रवाई में 38,000 फलस्तीनियों की मौत हो चुकी है। शहर, कस्बे, इमारतें, स्कूल और अस्पताल मलबे में तब्दील हो गए हैं। अनेक असहाय फलस्तीनियों को गाजा के एक इलाके से दूसरे इलाके में मवेशियों की तरह धकेला जा रहा है, यह तर्कसंगत नहीं लगता। जहां उन असहाय फलस्तीनियों को भेजा

गया है, वहां न तो खाने का बंदोबस्त है और न ही रहने का ठिकाना, बुनियादी सुविधाओं की तो बात ही छोड़ दीजिए। जिस अमानवीय अपराध के लिए हमास को नेतन्याहू दंडित करना चाहते हैं, वह खुद अब उसी तरह बर्बरता कर रहे हैं।

हालांकि हमास के हमले से लगता है कि नेतन्याहू को बहुत बड़ी राहत मिली है। भ्रष्टाचार के कई आरोपों में घिरे नेतन्याहू की सत्ता जाने के कगार पर थी। लेकिन पिछले साल अक्तूबर में जैसे ही हमास ने इस्राइल पर हमला किया, नेतन्याहू को राहत मिल गई। यहां तक कि सरकार में बैठे उनके कट्टर विरोधी भी उनका समर्थन करने लगे। तब से वह धरती से हमास को मिटाने की कोशिश कर रहे हैं। लेकिन वास्तविकता यह है कि उनके मंत्रिमंडल के आधे मंत्रियों एवं कुछ इस्राइली रक्षा बल (आईडीएफ) के जनरलों को भी यकीन नहीं है कि इस्राइल गाजा में युद्ध जीत रहा है। इसके अलावा, इस्राइल पर हिजबुल्ला और हुती के हमले से यह लड़ाई लेबनान और यमन तक फैल गई है।

अगर इस्राइली रक्षा बल हमास के आखिरी लड़ाके को भी मार देता है, तो क्या उससे हमास खत्म हो जाएगा? अगर कोई ऐसा सोचता है, तो यह उसका भोलापन ही होगा। किसी विवाद को सुलझाने के लिए हिंसक रास्ते और तरीके, चाहे कोई भी अपनाए, गलत हैं और उनका बचाव नहीं किया जा सकता। लेकिन दुखद है कि बहुत कम मुसलमान हमास के व्यापक उद्देश्य की वैधता पर सवाल उठाते हैं। उसका उद्देश्य है-फलस्तीनी इलाकों पर इस्राइल के कब्जे को खत्म करना। सड़कों पर उतरे लाखों अरबवासियों के सामने हमास इस्राइल के प्रतिरोध का प्रतिनिधित्व करता है। इसलिए जब तक फलस्तीनी इलाकों पर इस्राइल का कब्जा बरकरार रहेगा, हमास जैसे हिंसक संगठन (चाहे वे किसी भी नाम से हों) फलस्तीनी युवाओं को अपनी तरफ आकर्षित करते रहेंगे।

नेतन्याहू के पास इस्राइल के लिए कोई दीर्घकालिक दूरगामी दृष्टि नहीं है, बल्कि उनके लिए उनका अपना राजनीतिक अस्तित्व ही सबसे ज्यादा महत्वपूर्ण है। हमास को खत्म करने के लिए उन्होंने गाजा में जो युद्ध छेड़ा है, उससे निर्दोष फलस्तीनियों को तो पीड़ा हुई ही है, इस्राइल के दीर्घकालिक हितों को भी नुकसान पहुंचा है।

अगर वे यित्जाक राबिन और शिमोन पेरेज जैसे राजनेता होते, तो उन्हें एहसास होता कि इस्राइल की निर्विवाद सैन्य श्रेष्ठता के बावजूद उसकी दीर्घकालिक सुरक्षा और इस्राइली लोगों की शांति के लिए बातचीत और कूटनीति के जरिये फलस्तीनियों के साथ शांति के अलावा कोई विकल्प नहीं था। यह मसला बम और मिसाइलों के जरिये नहीं सुलझाया जा सकता है!

कई नेता इतिहास की धूल में दफन हो गए हैं और समय बीतता जाता है, लेकिन द्विराष्ट्र समाधान ही फलस्तीनी-इस्राइल संघर्ष को समाप्त करने का एकमात्र व्यावहारिक उपाय था, है और रहेगा। अफसोस की बात है कि गाजा और वेस्ट बैंक में अपने दस महीने लंबे अभियान के जरिये नेतन्याहू ने परोक्ष रूप से जितने लोगों को मारा है, उससे दस गुना ज्यादा भावी फलस्तीनी लड़ाकों को जन्म दिया है। एक फलस्तीनी लड़का, जिसने अपनी आंखों से अपने माता-पिता को इस्राइली बमों से मरते और मलबे के नीचे दबे हुए देखा है, अगर वह अगले दस वर्षों तक सभी बाधाओं के बावजूद जिंदा रहता है, तो 15 साल की उम्र में इस्राइलियों के खिलाफ बंदूक उठा सकता है। बदले की आग सिर्फ एक पक्ष को ही नहीं जलाती, बल्कि दोनों पक्षों को नुकसान पहुंचाती है। बदले की यह आग आखिर कब बुझेगी?

बिज़नेस स्टैंडर्ड
वर्ष 17 अंक 140

रेलवे में सुधार की जरूरत

ठीक सौ साल पहले वर्ष 1924 में देश में प्रथम रेल बजट प्रस्तुत किया गया था। वह ऐसा कालखंड था जब रेल बजट का आकार सामान्य बजट से भी अधिक था। तब से परिस्थितियां बहुत बदल चुकी हैं और भारत में अब अलग से रेल बजट प्रस्तुत करने का चलन समाप्त कर दिया गया है। वित्त वर्ष 2024-25 के बजट में भारतीय रेल का काफी कम जिक्र किया गया है, जिस पर किसी को आश्चर्य नहीं होना चाहिए। केवल बजट में उल्लेख नहीं होने का यह कतई अभिप्राय नहीं कि भारतीय रेल की अनदेखी हुई है। वित्त वर्ष 2024-25 में रेलवे के लिए पूंजीगत व्यय 2.62 लाख करोड़ रुपये रहने का अनुमान लगाया गया है, जिनमें सकल बजट सहायता 2.52 लाख करोड़ रुपये है। शेष 10,000 करोड़ रुपये बजट से इतर अन्य स्त्रोतों से जुटाए जाएंगे। पिछले वित्त वर्ष की तुलना में इस वर्ष बजट में पूंजीगत आवंटन में मात्र 5 प्रतिशत बढ़ोतरी की गई है, पंरतु इसे वर्ष 2023-24 के संदर्भ में देखा जाना चाहिए जब पूंजीगत आवंटन उससे पिछले वर्ष की तुलना में लगभग 51 प्रतिशत अधिक रहा था।

इस वर्ष के बजट में रेल संपर्क और औद्योगिक विकास को एक दूसरे से जोड़ने का प्रस्ताव दिया गया है। इस दिशा में आगे बढ़ते हुए बड़े औद्योगिक गलियारों जैसे विशाखापत्तनम-चेन्नई औद्योगिक गलियारा, हैदराबाद-बेंगलूरु गलियारा और अमृतसर-कोलकाता औद्योगिक गलियारा आदि में संपर्क बढ़ाने पर विशेष ध्यान दिया गया है। हालांकि, पूंजीगत आवंटन बढ़ाने के परिणाम मिले-जुले रहे हैं। वर्ष 2023-24 के संशोधित अनुमान दर्शाते हैं कि नई रेल पटरियां बिछाने, आमान परिवर्तन, रेल पटरी का दोहरीकरण और रेल मार्गों के नवीकरण पर संचयी व्यय 95,560.57 करोड़ रुपये रहा था। चालू वित्त वर्ष में इन चार मदों में कुल आवंटन घटकर 86,286.42 करोड़ रुपये रह गया। रेल डिब्बों और विद्युतीकरण योजनाओं पर आवंटन में मामूली कमी की गई है। हालांकि, पूंजीगत व्यय बढ़ाने के बाद भी परिचालन क्षमता में सुधार नहीं हुआ है। उदाहरण के लिए वर्ष 2019-20 में परिचालन अनुपात 95 प्रतिशत था, जिसका आशय था कि भारतीय रेल को प्रत्येक 100 रुपये कमाई में 95 रुपये खर्च करने पड़े थे। वर्ष 2023-24 में परिचालन अनुपात बिगड़कर 98.65 प्रतिशत हो गया।

पिछले 10 वर्षों में भारतीय रेल ने 31,180 किलोमीटर से अधिक रेल पटरियां बिछाई हैं। इसी अवधि के दौरान पटरियां बिछाने की गति भी तीन गुना से अधिक हो गई है। देश में जितने बड़ी लाइन हैं, उनमें लगभग 95 प्रतिशत हिस्से पर विद्युतीकरण कार्य पूरा हो चुका है। अकेले वर्ष 2023-24 में भारतीय रेल ने 7,188 किलोमीटर मार्गों का विद्युतीकरण किया था। हालांकि, इन उपलब्धियों के बाद भी रेल मंत्रालय द्वारा जारी आंकड़ों के अनुसार मालगाड़ियों की औसत रफ्तार 2023-24 में 23.6 किलोमीटर प्रति घंटा रही है। रफ्तार से जुड़ी पाबंदियों के कारण अर्द्ध-तेज रफ्तार वाली वंदे भारत रेलगाड़ियों की औसत रफ्तार भी 2020-21 में 84.48 किलोमीटर प्रति घंटा से कम होकर 2023-24 में 76.25 किलोमीटर प्रति घंटा रह गई है। यह स्पष्ट नहीं है कि पूंजीगत व्यय में बढ़ोतरी का असर भारतीय रेल की बढ़ी परिचालन क्षमता के रूप में दिखना कब शुरू होगा। कम रफ्तार के साथ ऊंची लागत वाले माल की ढुलाई का सीधा मतलब है कि भारतीय रेल को परिवहन के अन्य वैकल्पिक माध्यमों जैसे सड़क मार्ग आदि के हाथों राजस्व गंवाना पड़ा रहा है।

पिछले कुछ वर्षों में रेल दुर्घटनाएं बढ़ी हैं (यद्यपि पहले की तुलना में अब इनमें कमी आई हैं) परंतु यह आश्चर्य का विषय है कि राष्ट्रीय रेल संरक्षा कोष 10,000 करोड़ रुपये के स्तर पर थम गया है। कवच स्वचालित रेल सुरक्षा प्रणाली भी केवल 1,500 किलोमीटर रेल मार्गों पर सक्रिय है, जो देश में रेल तंत्र का केवल 2.14 प्रतिशत हिस्सा है। भारतीय रेल को रेलगाड़ियों खासकर व्यस्त मार्गों पर सामान्य डिब्बों (गैर-वातानुकूलित) में भीड़ की समस्या दूर करने पर ध्यान देना होगा। किराये तर्कसंगत बनाकर और क्षमता बढ़ाकर इसका समाधान निकाला जा सकता है। यह स्पष्ट है कि तेजी से बढ़ती भारतीय अर्थव्यवस्था की आवश्यकताओं के साथ गति बनाए रखने के लिए भारतीय रेल को बड़े बदलाव करने होंगे।

भारतीय मध्य वर्ग की क्या हैं विशेषताएं?

बजट और उससे निकलने वाले राजनीतिक संकेत में मोदी सरकार की गलती यह रही कि वह भारत के उभार, मजबूत होती वृद्धि और बाजार में तेजी जैसे उन संकेतों से दूर हो गई जो वह आमतौर पर देती आई है

राष्ट्र की बात

शेखर गुप्ता

हालिया बजट में वित्त मंत्री निर्मला सीतारमण ने मध्य वर्ग को छेड़ कर बहुत मुश्किल हालात पैदा कर दिए। पूरे सप्ताह उन्हें तथा उनके मंत्रालय को सोशल मीडिया पर हमलों का सामना करना पड़ा। मुख्य धारा के मीडिया के लोगों ने जरूर संतुलित ढंग से आश्चर्य प्रकट किया।

पूंजीगत लाभ कर में परिवर्तन (अमीरों से अधिक कर लेने की कोशिश खासकर इसलिए कि वे संचित धन से धनार्जन करते हैं) के विरुद्ध तार्किक, समझदारी भरे, वैचारिक और यहां तक कि नैतिक दलीलें भी दी जा सकती हैं। परंतु इससे उस गुस्से को उचित नहीं ठहराया जा सकता है जो देखने को मिला है और सैकड़ों व्यक्तिगत कटाक्ष करते हुए मीम जिसका उदाहरण हैं।

क्या मोदी सरकार अपने सबसे मूल्यवान समर्थकों यानी मध्य वर्ग (खासकर हिंदू) के दिमाग को पढ़ने में नाकाम रही? या फिर उसने उन्हें कुछ ज्यादा ही हल्के में ले लिया? इससे पहले 2019 में मैंने इसी स्तंभ में कहा था कि मध्य वर्ग मोदी की भाजपा के लिए मुस्लिमों के समान है। मैंने यह निष्कर्ष इस आधार पर निकाला था कि मोदी सरकार पेट्रोल और डीजल पर अधिक से अधिक कर वसूल करके गरीबों के लिए प्रत्यक्ष लाभ अंतरण की भारी भरकम योजना चला रही थी। यह एक तरह की रॉबिनहुड शैली की राजनीति थीः मध्य वर्ग से लो और गरीबों को दो।

इससे वे गरीब प्रसन्न हुए जो मतदाताओं में बड़ी हिस्सेदारी रखते हैं। अगर मध्य वर्ग नाखुश हो रहा है तो होने दो। वह तो हर हाल में भारतीय जनता पार्टी (भाजपा) को वोट देगा। हमारी दलील थी कि भाजपा मध्य वर्ग के मतदाताओं को हल्के में ले सकती है, ठीक वैसे ही जैसे 'धर्मनिरपेक्ष' दल मुस्लिमों को लेते हैं।

क्या अब इसमें बदलाव आएगा? मुझे नहीं लगता। यह नाराजगी जल्दी ही दूर हो जाएगी जब हल्के फुल्के सुधार देखने को मिलेंगे और राष्ट्रवाद, धर्म, गांधी परिवार जैसे मुद्दों पर बात होने लगेगी जो करों से ज्यादा महत्त्व रखते हैं। अभी नाराज चल रहे लोगों में से अधिकांश भाजपा को वोट देना जारी रखेंगे। वे मोदी, उनकी पार्टी या उसकी विचारधारा से अधिक नाराज नहीं हैं। वे अभी भी तीनों को पसंद करते हैं, बस थोड़ा नाखुश हैं। मोदी सरकार इस बजट में और इससे निकले आर्थिक संकेत में अपने पुराने रवैये से थोड़ा दूर हट गई जिसके तहत इस बात का दम भरा जाता था कि भारत का उभार हो रहा है, वृद्धि में मजबूती आएगी और बाजारों में और तेजी देखने को मिलेगी। बजट से निकला गंभीर संकेत समझदारों के लिए निराशाजनक है।

मध्य वर्ग को अच्छी खबरों की लत लगी हुई है। उसका मानना है कि हर बजट से उसे और अधिक पैसे कमाने में मदद मिलनी चाहिए। उसे यह सुनना पसंद नहीं है कि 'सुनो, तुमने बहुत कमा लिया, खासकर तेजी वाले दशक में। अब समय आ गया है कि तुम कुछ ज्यादा चुकाओ।' हो सकता है अपनी संचित निधि से अधिक पैसे कमाना उचित न हो।

अमीरों को ज्यादा परवाह नहीं है। मध्य वर्ग खासकर सामाजिक-आर्थिक धड़े के निचले हिस्से में मौजूद मध्य वर्ग जिसने बड़ी ईएमआई ले रखी हैं, निवेश के लिए दूसरा मकान खरीद रखा है, अपनी बचत को रिजर्व बैंक की गारंटी वाले सावधि जमा से निकालकर शेयर बाजार, म्युचुअल फंड और डेट बॉन्ड में लगाया हो, वही सबसे अधिक नाराज नजर आ रहा है।

वे नरेंद्र मोदी और उनकी राजनीति को इतना प्यार तो करते ही हैं कि इसकी कुछ कीमत चुकाने की मंशा रखते हों। आखिर उनकी एक पुकार पर एक करोड़ से अधिक लोगों ने अपनी एलपीजी सब्सिडी छोड़ ही दी थी। परंतु जिस बात ने उन्हें चकित किया है वह है संदेश देने के तरीके में बदलाव। वे शायद इसे इस प्रकार देखते हैं मानो उनसे कहा जा रहा हो कि उन्होंने कुछ अनैतिक किया है, बहुत अधिक धन कमाया है और सरकार वापस उन पर लगाम लगा रही है।

सन 1991 की गर्मियों में सुधारों की शुरुआत होने के बाद लगातार सरकारों और वित्त मंत्रियों का ध्यान एक बात पर केंद्रित रहा हैः जिन लोगों के पास अधिक धन है उन्हें बाजारों की ओर प्रेरित किया जाए। यही वजह है कि पूंजीगत लाभ कर में रियायतें दी गईं और बीते दशकों के दौरान उनका विस्तार भी किया गया। बाजार ने भी धन्यवाद किया और उसमें तेजी देखने को मिली। उस दौर की सरकारें इससे लाभान्वित हुईं।

बीते 33 वर्ष में सभी सरकारों, खासकर वर्तमान सरकार ने म्युचुअल फंड के बढ़ते कारोबार, डीमैट खातों में इजाफे और शेयर सूचकांकों में तेजी का जश्न मनाया है। हाल में उठाए गए कुछ कदमों मसलन 2023 के बजट में डेट बॉन्ड को लेकर उठाए गए कदमों आदि का मकसद यही नजर आता है कि अधिशेष उत्पन्न कर रहे वर्ग को वापस बैंक जमा की दिशा में लाया जाए। वे इसके लिए तैयार नहीं थे।

भारत का मध्य वर्ग है क्या? क्या मध्य वर्ग आय कर दाताओं से बनता है? आय कर चुकाने वालों की संख्या, आय कर रिटर्न दाखिल करने वालों की तुलना में एक तिहाई से भी कम है। 7.4 करोड़ आय कर रिटर्न भरने वालों में से केवल 2.2 करोड़ कर चुकाते हैं। यह संख्या तो दुनिया के सबसे बड़े बनते मध्य वर्ग के वास्तविक आकार का एक मामूली हिस्सा भी नहीं है।

यह सोचना अधिक सुरक्षित होगा कि मध्य वर्ग क्या चाहता है। यह निश्चित रूप से ये चाहता है और अपेक्षा करता है कि भारत दुनिया की सबसे मजबूत अर्थव्यवस्था हो। वह अर्थव्यवस्था से लेकर विज्ञान, खेल से लेकर सेना और विनिर्माण से लेकर सॉफ्टवेयर तक दुनिया का नेतृत्व करे और इस दौरान दुनिया को उपदेश देने का ऐतिहासिक अधिकार भी अपने पास रखे। हो सकता है वे इसे अभिव्यक्त न करें लेकिन वे विश्व गुरु बनने की आकांक्षा को लेकर किसी तरह का भ्रम नहीं रखते। उन्हें यह यकीन करना अच्छा लगता है कि पश्चिम का पराभव हो रहा है और यह भारत के उदय का समय है। अगर मैं एक ऐसा वीडियो रिकॉर्ड करूं जिसमें कहा जाए कि डॉलर अंतिम सांसें गिन रहा है, अमेरिका की शक्ति का पतन हो रहा है और यूरोप पूरी तरह खत्म हो चुका है तो वह यकीनन वायरल हो जाएगा। भले ही तथ्य कुछ भी हों। मध्य वर्ग के मिजाज को सबसे अच्छे से परिभाषित करने वाला दृश्य है हर शाम वाघा बॉर्डर पर होने वाला कार्यक्रम।

वे इसी उम्मीद में मोदी और भाजपा को वोट देना जारी रखते हैं। वे अपनी संपत्ति में वृद्धि, बाजार में तेजी, भारत में बढ़ते विदेशी निवेश आदि को इसी पैकेज का हिस्सा मानते हैं। यकीनन वे बिना कर चुकाए यह सब हासिल करना चाहते हैं। या फिर कम से कम सिंगापुर के दर्जे का टैक्स चाहते हैं। उन्हें सिंगापुर शैली के लोकतंत्र से भी दिक्कत नहीं होगी। अब उनसे कहा जा रहा है कि वे वापस बैंकों की सावधि जमा योजनाओं का रुख करें।

मैं बस यही कहना चाहूंगा कि हम अभी तक नहीं जानते हैं कि मध्य वर्ग क्या है और वह क्या चाहता है। आइए इस बात पर केंद्रित रहते हैं कि भारतीय मध्य वर्ग क्या नहीं है। एक बात तो यह है कि वह आभार नहीं मानता। मोदी सरकार इस समय जिस तपिश का सामना कर रही है वह जल्दी ही ठंडी पड़ जाएगी। परंतु क्या आप बीती तीन पीढ़ियों के एक ऐसे व्यक्ति का नाम ले सकते हैं जिसने नए मध्य वर्ग के निर्माण, विस्तार और उसे समृद्ध बनाने में इतनी मेहनत की हो। विनियमन, लाइसेंस-कोटा राज का अंत, आयात के लिए खुलापन, करों और शुल्कों में कटौती तथा मध्य वर्ग को बाजार और उदार कर प्रोत्साहन देने का काम किया।

अब एक सवाल करते हैंः वह नेता कौन है जिससे मध्य वर्ग ने 2011 के बाद से सबसे अधिक खारिज और नापसंद किया? आपका अंदाजा सही है वह हैं मनमोहन सिंह। सन 1999 में उन्होंने और उनकी पार्टी ने मध्य वर्ग के बीच लोकप्रियता को आंकने के लिए उन्हें दक्षिणी दिल्ली लोक सभा सीट से उम्मीदवार बनाया था। शायद उन्हें लगा था कि जनता उन्हें वोट देकर धन्यवाद ज्ञापन करेगी। बदले में उन्हें अवमानना मिली। यह मध्य वर्ग पात्रताओं की चाह रखता है, इसमें आभार प्रदर्शन की भावना नहीं।

कार्यस्थल पर महिलाओं को समान अवसर नहीं

जिंदगीनामा

कनिका दत्ता

इस महीने की दो घटनाओं ने कार्यस्थल पर महिलाओं की संख्या बढ़ाने के जटिल मुद्दे से जुड़ी व्यावहारिक समस्याओं को स्पष्ट रूप से दर्शाया है। महीने की शुरुआत में केंद्र सरकार द्वारा कथित रूप से भेदभावपूर्ण भर्ती वाली प्रक्रिया की ओर ध्यान दिलाए जाने के बाद राज्य श्रम विभाग की टीम ने ऐपल के आईफोन असेंबलर फॉक्सकॉन के श्रीपेरुंबुदुर, तमिलनाडु में मौजूद संयंत्र का दौरा किया।

इसका कारण रॉयटर्स की एक जांच थी जिसमें यह आरोप लगाया गया था कि वर्ष 2023 और 2024 के दौरान फॉक्सकॉन ने अपने मुख्य आईफोन संयंत्र में विवाहित महिलाओं को काम पर रखने से इनकार कर दिया था। उम्मीद के मुताबिक कंपनी ने इस तरह की किसी भी प्रक्रिया से साफ इनकार कर दिया। कंपनी के मानव संसाधन (एचआर) अधिकारी ने श्रम विभाग के अधिकारियों को बताया कि कंपनी के कुल कर्मचारियों में से आठ प्रतिशत विवाहित महिलाएं हैं लेकिन इसने आईफोन संयंत्र (कंपनी गूगल के लिए पिक्सल स्मार्टफोन भी बनाती है) में महिलाओं की उपस्थिति का कोई ब्योरा नहीं दिया। कंपनी ने यह भी कहा कि हाल में जो भर्तियां हुई हैं उनमें से 25 प्रतिशत विवाहित महिलाएं हैं।

इसी महीने उच्चतम न्यायालय ने महिला कर्मचारियों को विशेष मासिक अवकाश अनिवार्य रूप से देने के लिए सरकारों को निर्देश जारी करने से इनकार कर दिया। हालांकि विडंबना यह है कि महिलाओं के स्वास्थ्य से जुड़े मुद्दे पर फैसला सुनाने वाले पीठ की अध्यक्षता एक पुरुष द्वारा की जा रही थी जो भारत के मुख्य न्यायाधीश डी वाई चंद्रचूड़ हैं। अदालत ने इस नीति के प्रतिकूल परिणामों की ओर भी पूरी वैधता से इशारा किया जिसमें कंपनियों को महिलाओं को काम पर रखने से हतोत्साहित करना भी शामिल है।

दोनों मुद्दे महिलाओं को काम पर रखने से जुड़ी व्यावहारिक समस्याओं की ओर इशारा करते हैं जिसका सामना कॉरपोरेट प्रबंधन नियमित रूप से कर रहा है लेकिन कार्यस्थल पर महिलाओं से जुड़े विमर्श पर शायद ही खुलकर चर्चा होती है। महिला अधिकार महिलाओं से जुड़े अधिकार, विविधता और समानता के परिप्रेक्ष्य में कार्यस्थल पर अधिक महिलाओं की भर्ती की वकालत करते हैं। लेकिन कम ही लोग नियोक्ता कंपनी या संस्थान के नजरिये से इस मुद्दे को देखते हैं। ऐसा करना महत्त्वपूर्ण है क्योंकि इस समस्या से बेशक कार्यस्थल पर महिला-पुरुष विविधता को प्रोत्साहित करने पर असर पड़ता है। कोई भी सीईओ (मुख्य कार्य अधिकारी) या मानव संसाधन (एचआर) प्रबंधक (यहां तक अगर वे महिलाएं हैं तब भी) इस बात की पुष्टि करेंगे कि महिलाओं की विशेषतौर पर विवाह योग्य या बच्चा पैदा करने के लिए उपयुक्त उम्र वाली महिलाओं की नियुक्ति की लागत अधिक हो सकती है। कंपनी जितनी छोटी होगी उसका मार्जिन उतना ही कम होगा ऐसे में मातृत्व या मासिक धर्म अवकाश की लागत या इससे जुड़े नतीजे की लागत वहन करने की उनकी क्षमता भी उतनी ही कम होगी।

साल 2017 में पहली दो संतानों के लिए महिलाओं को दिए जाने वाले मातृत्व अवकाश की अवधि बढ़ाकर 12 से 26 सप्ताह कर दी गई थी, जो नियम 50 या इससे अधिक कर्मचारियों वाले किसी भी संस्थान पर लागू होता है। महिला कर्मचारियों के नजरिये से यह पूरी तरह स्वीकार्य योग्य फैसला है। लेकिन कंपनी के प्रबंधन के नजरिये से देखें तो स्थिति कुछ और होती है। मसलन इस अवधि के दौरान किसी और की भर्ती करने या प्रशिक्षण की लागत दोगुनी हो जाती है, ऐसे में महिलाओं की भर्ती की संभावना काफी कम होने लगती है। इसके अलावा 50 से अधिक कर्मचारियों वाली कंपनियों में बच्चों की देखभाल के लिए क्रेच सेवाएं अनिवार्य किए जाने पर इससे जुड़ी लागत (और परेशानियां) और बढ़ जाती हैं।

अधिकांश महिला कर्मचारी मासिक धर्म अवकाश के रूप में कुछ समय की छुट्टी लेना चाहेंगी। लेकिन कंपनी के दृष्टिकोण से देखा जाए तो किसी चल रही परियोजना के बीच में या बड़े पैमाने पर उत्पादन कार्यक्रम के दौरान कर्मचारियों के अनुपस्थित रहने से काफी असुविधा होती है।

इन चिंताओं के कारण कंपनियां महिलाओं को नौकरी देने से हिचकिचाती हैं और अक्सर ऐसा करती भी हैं। यह वास्तव में दोतरफा नुकसान है, कंपनियां अनजाने में कार्यबल के एक बड़े हिस्से की प्रतिभा का फायदा नहीं उठा पाती हैं और महिलाएं रोजगार के अवसरों से वंचित हो जाती हैं।

लोग अक्सर स्वीडन और सामान्य तौर पर नॉर्डिक देशों की मिसाल देते हैं जहां तीन-चौथाई महिलाएं कार्यबल में हैं और यह बच्चों की देखभाल से जुड़ी किफायती सेवा, और वेतन सहित उदार प्रसूति अवकाश (मां और पिता दोनों के लिए) तक की पहुंच का परिणाम है। यह अनुकूल वातावरण काफी हद तक पश्चिम के विकसित, शिक्षित समाज की आबादी से जुड़ी चिंताओं से भी प्रेरित है जहां घटती आबादी के साथ, महिलाओं को बच्चे पैदा करने के लिए प्रोत्साहित करने की आवश्यकता है। वहीं दूसरी ओर भारत में घटती और बुजुर्ग होती आबादी की समस्या अभी दूर है और इस वक्त मुद्दा यह है कि बच्चों को जन्म देने की महिलाओं की स्वतंत्रता से समझौता किए बिना अधिक महिलाओं को कार्यस्थल में कैसे लाया जाए।

अब सवाल यह है कि भारतीय कंपनियों को महिलाओं को नियुक्त करने के लिए वास्तव में कैसे प्रोत्साहित किया जाए। वर्ष 2018 में, श्रम एवं रोजगार मंत्रालय ने मातृत्व अवकाश प्रोत्साहन योजना का प्रस्ताव रखा था जिसमें 15,000 रुपये प्रति माह की वेतन सीमा के साथ महिला श्रमिकों को नियुक्त करने और 26 सप्ताह का मातृत्व लाभ देने वाली कंपनियों को सात सप्ताह के वेतन की पूर्ति की जाएगी। इसके बारे में आखिरी बार 2019 में एक संसदीय प्रश्न के उत्तर में सुना गया जिसके अनुसार, सरकार इसकी फंडिंग के विवरण पर काम कर रही थी।

यह योजना निश्चित रूप से दृष्टिकोण में एक महत्त्वपूर्ण व्यावहारिकता को दर्शाती है। हालांकि, इरादा भले ही अच्छा हो लेकिन इसके साथ सरकारी क्षतिपूर्ति से जुड़ी सभी जटिलताएं हैं और इन मुश्किलों से एफएएमई या उत्पादन-लिंक्ड प्रोत्साहन योजनाओं के माध्यम से लाभ पाने वाली इकाइयां भी अच्छी तरह से वाकिफ हैं।

यदि सरकार महिलाओं के रोजगार की जिम्मेदारी लेने की इच्छुक है तो शायद एक बेहतर विचार यह हो सकता है कि योजना में कर छूट का लाभ देकर बदलाव देखा जाए। उदाहरण के तौर पर लिए, मातृत्व लाभ भुगतान के लिए या अवकाश अवधि के दौरान अमुक कर्मचारी की जगह किसी दूसरे कर्मचारी की भर्ती लागत को उच्च स्तर पर रखने की अनुमति दी जा सकती है। वेतन सीमा को हटाकर इस दायरे का विस्तार करने से भी ऐसे प्रोत्साहन को सार्वभौमिक स्तर पर व्यापकता मिल जाएगी और भर्ती लागत को समान स्तर पर लाने की दिशा में कुछ हद तक आगे बढ़ा जा सकेगा। निश्चित रूप से कॉरपोरेट प्रबंधन के बीच ऐसी योजना के लोकप्रिय होने की संभावना है। आखिरकार, कौन कर छूट पसंद नहीं करेगा?

आपका पक्ष

रासायनिक खाद का इस्तेमाल भूजल बना रहा जहरीला

एक रिपोर्ट में पंजाब के भूजल में नाइट्रेट, लौह अयस्क, आर्सेनिक, क्रोमियम, मैंगनीज, निकल, कैडमियम, सीसा और यूरेनियम की खतरनाक उपस्थिति की पुष्टि हुई है। दरअसल, पंजाब में व्यावसायिक कृषि के क्रम में लगातार उत्पादन बढ़ाने के मकसद से जिस बड़ी मात्रा में रासायनिक उर्वरकों और कीटनाशकों का उपयोग हुआ है, उसका खमियाजा पंजाब के आम लोगों को भुगतना पड़ रहा है। यह सिर्फ पंजाब ही नहीं देश के कई भागों में आर्सेनिक सहित पानी में विषैले तत्त्वों का प्रतिशत साल दर साल बढ़ता जा रहा है। सक्षम लोग तो हाई क्वालिटी के वाटर प्योरीफायर लगाकर अपनी सुरक्षा कर लेते हैं। मगर आम जनता के स्वस्थ को ही इसका खमियाजा भुगतना पड़ता है। हालत यह है कि कस्बों, शहरों में भी नगर निगम द्वारा वाटर फिल्टर ट्रीटमेंट प्लांट से साफ करके नलों में भेजा गया पानी भी पूर्ण शुद्ध नहीं है। जैसे सरकार ने नल जल योजना शुरू की है, इस प्रकार सुदूर गांवों तक जनता को स्वच्छ पेयजल मिल सके इसके लिए पर्याप्त व्यवस्था करनी चाहिए। जनता को भी पानी में फिटकरी का छोटा टुकड़ा डालकर और छह घंटे बाद उस पानी को उबालकर छानकर प्रयोग में लेना चाहिए। अपने आप अपने बच्चों के स्वास्थ्य की रक्षा के लिए हर परिवार इतना तो कर ही सकता है।

सुभाष बुडावन वाला, रतलाम

पंजाब के खेतों में रासायनिक उर्वरकों और कीटनाशकों के उपयोग के कारण भूजल में कई खतरनाक धातुएं मिलने की पुष्टि हुई है

प्रकृति का संरक्षण जरूरी

विश्व प्रकृति संरक्षण दिवस हर वर्ष 28 जुलाई को मनाया जाता है। इसका मुख्य उद्देश्य प्रकृति के संरक्षण के प्रति लोगों में जागरूकता बढ़ाना है। पर्यावरण संरक्षण के लिए लोगों को जहां जगह मिले वहां पौधे लगाने चाहिए। सरकार को सड़क या रेलवे के विस्तार के लिए काटे जाने वाले पेड़ों की जगह पौधे लगाने चाहिए। प्रकृति से खिलवाड़ का बुरा नतीजा मौसम के चक्र बिगड़ने और प्राकृतिक आपदाओं के रूप में देख रहे हैं। ग्लोबल वार्मिंग का भी खतरा बढ़ता जा रहा है और धरती पर गर्मी बढ़ रही है। एक समय था जब लोग गर्मी से बचने के लिए वृक्षों की छाया या हवा पर निर्भर थे। वृक्षों के कटने के बाद लोगों ने गर्मी से बचने के लिए हाथ पंखा बनाया। गर्मी बढ़ने पर बिजली के पंखे, कूलर फिर एसी लगाया जाने लगा। यह साबित कर रहा है कि धरती पर दिन प्रतिदिन गर्मी बढ़ती जा रही है। हमें अभी से प्रकृति संरक्षण के लिए गंभीर होना होगा। बढ़ती गर्मी इंसान के अस्तित्व के लिए ही नहीं, बल्कि संपूर्ण प्राणी जाति के लिए हानिकारक है। इसी कारण शायद कुछ प्रजातियां विलुप्त भी हो गई हैं। बारिश के मौसम में अगर पौधे लगाएं जाएं तो यह इस मौसम में बहुत अच्छे तैयार होते हैं। इसलिए जिन लोगों के घरों में पौधे लगाने की जगह है वहां एक पौधा तो जरूर लगाएं। भारत सारी दुनिया में प्राकृतिक सौंदर्य में शीर्ष माना जाता है। प्रकृति की सुंदरता जंगली-जीव जंतुओं से भी होती है। लेकिन आज इंसान ने भौतिकतावाद की अंधी दौड़ में प्रकृति का विनाश कर रहा है। साथ ही जीव-जंतुओं का जीना भी दुश्वार प्रकृति से खिलवाड़ कारण कर दिया है। यहां तक कि बहुत से जंगली-जीव जंतुओं की प्रजातियां लुप्त होने के कगार पर पहुंच चुकी है।

राजेश कुमार चौहान, जालंधर

पाठक अपनी राय हमें इस पते पर भेज सकते हैं : संपादक, बिज़नेस स्टैंडर्ड, 4, बहादुर शाह जफर मार्ग, नई दिल्ली 110002. आप हमें ईमेल भी कर सकते हैं : lettershindi@bsmail.in
पत्र/ईमेल में अपना डाक पता और टेलीफोन नंबर अवश्य लिखें।

देश-दुनिया

फोटो - पीटीआई

विदेश मंत्री एस. जयशंकर ने रविवार को जापान में टोक्यो के एदोगावा स्थित फ्रीडम प्लाजा में महात्मा गांधी की प्रतिमा का अनावरण किया। जयशंकर 'क्वाड' (चतुष्पक्षीय सुरक्षा संवाद) देशों के विदेश मंत्रियों की बैठक के लिए लाओस से दो दिवसीय यात्रा पर रविवार को जापान पहुंचे।

दैनिक जागरण

परिश्रम से योग्यता और योग्यता से ही सफलता प्राप्त होती है

सिर से ऊपर पानी

दिल्ली में सिविल सेवा परीक्षा की तैयारी कराने वाले एक कोचिंग सेंटर के बेसमेंट में पानी भरने से तीन छात्रों की मौत हादसा नहीं, बल्कि मानव जनित त्रासदी है। इस त्रासदी की जड़ में है घोर लापरवाही और व्यवस्था की जड़ों में समा गया बेलगाम भ्रष्टाचार। इससे संतुष्ट नहीं हुआ जा सकता कि कोचिंग संस्थान के दो लोगों को गिरफ्तार कर लिया गया है, क्योंकि दिल्ली नगर निगम के उन कर्मचारियों और अधिकारियों को क्यों नहीं गिरफ्तार किया गया जो सब कुछ जानते-बूझते हुए इस संस्थान को बेसमेंट में लाइब्रेरी चलाने की सुविधा प्रदान किए हुए थे। आखिर जब बेसमेंट में स्टोर या पार्किंग की अनुमति दी गई थी तो वहां लाइब्रेरी कैसे चलने लगी। स्पष्ट है कि कोचिंग संचालकों और दिल्ली नगर निगम के अधिकारियों की मिलीभगत से ऐसा हो रहा होगा। जलभराव के कारण पानी जब बेसमेंट में घुसा तब लाइब्रेरी में 25-30 छात्र थे। यह तो गनीमत रही कि तीन अभागे छात्रों को छोड़कर बाकी सब जैसे-तैसे निकल आए। इस इलाके में बरसात में हर समय जलभराव होता है, लेकिन किसी ने उसकी सुधि नहीं ली। इसका कोई विशेष औचित्य नहीं कि एमसीडी ने एक जांच समिति गठित करने की बात कही है। जांच के नाम पर लीपापोती होने की ही आशंका अधिक है।

दिल्ली की घटना इसकी परिचायक है कि जिन पर भी शहरी ढांचे की देखरेख करने और उसे संवारने की जिम्मेदारी है, वे अपना काम सही से करने के लिए तैयार नहीं। यही कारण है कि देश की राजधानी के साथ-साथ अन्य महानगरों का भी शहरी ढांचा बुरी तरह चरमरा गया है। बात चाहे मुंबई की हो या बेंगलुरु की या ऐसे ही अन्य बड़े शहरों की-हर कहीं अनियोजित विकास और शहरी निर्माण संबंधी नियम-कानूनों के खुले उल्लंघन के चलते आए दिन दुर्घटनाएं होती रहती हैं। स्थिति यह है कि सरकारी भवनों तक में सुरक्षा के उपायों की अनदेखी होती है। कहने को तो अपने देश में हर तरह के नियम-कानून हैं, लेकिन वे कागजों पर ही अधिक हैं। इसी कारण नगर नियोजन दयनीय दशा में है। नगर निकायों के औसत जनप्रतिनिधि और अधिकारी-कर्मचारी पैसे बनाने के फेर में रहते हैं और अनियोजित विकास को रोकने के बजाय उसे बढ़ावा देने का काम करते हैं। उनकी इसी प्रवृत्ति के चलते आम लोगों में भी नियम-कानूनों के उल्लंघन की आदत पड़ती चली जा रही है। सब चलता है वाली प्रवृत्ति इस तरह अपनी जड़ें जमा चुकी है कि व्यवस्था की परवाह करना ही छोड़ दिया गया है। यह बेहद दुर्भाग्यपूर्ण है कि शहरी विकास के बड़े-बड़े दावे करने और उन्हें संवारने की तमाम योजनाएं बनाने के बावजूद देश के शहर दुर्दशाग्रस्त हैं। अब तो यह दुर्दशा इतनी बढ़ गई है कि इसकी उम्मीद भी नहीं रह गई है कि शहरों की दशा में कोई सुधार हो सकेगा। यह उम्मीद इसीलिए नहीं है, क्योंकि अव्यवस्था और अनदेखी के चलते शहरीकरण के मामले में हर जगह पानी सिर से ऊपर बहने लगा है।

डेंगू से बचाव

स्वस्थ रहने के लिए सावधानी आवश्यक है। कोई भी बीमारी तभी बढ़ती है जब लोग उसे गंभीरता से नहीं लेते हैं। स्वास्थ्य विभाग भी कई जागरूकता अभियान चलाता है, लेकिन लोग स्वास्थ्य के प्रति गंभीर नहीं होते हैं। इसी कारण बीमारियां बढ़ती हैं। मानसून में कई बीमारियां फैलती हैं। सतर्क रहकर इनसे बचा जा सकता है। हिमाचल प्रदेश में हर वर्ष जनजनित रोग फैलते हैं। स्क्रब टायफस और डेंगू से कई लोगों की मौत भी होती रही है। स्वास्थ्य विभाग बरसात से पूर्व ही इन बीमारियों से निपटने के लिए तैयार रहता है। कई लोग पहले अपने स्तर पर ही उपचार करवाते हैं, लेकिन जब स्थिति बिगड़ती है तो अस्पताल का रुख करते हैं। ऐसा किया जाना कतई उचित नहीं है। गत दिनों कांगड़ा जिला के पालमपुर में विद्युत बोर्ड में कार्यरत जसवां परागपुर विधानसभा निवासी की डेंगू से मौत हो गई। पालमपुर स्थित अस्पताल में स्थिति में सुधार न होने पर पीड़ित को नालागढ़ ले जाते समय तबीयत अधिक बिगड़ने पर हमीरपुर स्थित अस्पताल में भर्ती करवाया गया जहां उसकी मौत हो गई। बरसात में घरों के निकट पानी एकत्र हो जाता है। जहां पर मच्छर तैयार हो जाते हैं। मच्छर के काटने से व्यक्ति को तेज बुखार होता है और जोड़ों एवं मांसपेशियों में तेज दर्द होता है। इस तरह के लक्षण दिखने पर पीड़ित को तत्काल अस्पताल में जांच करवानी चाहिए। डेंगू से बचाव के लिए आवश्यक है कि लोग घरों की खिड़कियों को बंद रखें। घर से बाहर निकलने पर पूरे कपड़े पहनें। सबसे आवश्यक है कि अपने घरों के आसपास सफाई का विशेष ध्यान रखें और समय-समय पर कीटनाशकों का भी छिड़काव किया जाना चाहिए। स्वास्थ्य विभाग को भी चाहिए कि लोगों को बरसात में फैलने वाली बीमारियों के बारे में जागरूक किया जाए। सावधान रहकर ही बीमारी से बचाव किया जा सकता है।

धरोहरों के संरक्षण का कर्तव्य

हृदयनारायण दीक्षित

अहोम साम्राज्य के मैदाम को यूनेस्को की सूची में जगह मिलना गौरव का क्षण है, किंतु देश में तमाम स्थल अंतरराष्ट्रीय धरोहर घोषित किए जाने योग्य हैं

यूनेस्को की विश्व धरोहर समिति ने असम के अहोम राजवंश के 'मैदाम' को विश्व धरोहर सूची में सम्मिलित किया है। देश प्रसन्न है। इस संदर्भ में प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी का कहना यथार्थ ही है कि विरासत सिर्फ इतिहास नहीं, बल्कि मानवता की साझा चेतना है। मैदाम असम के चराईदेव जिले में अहोम साम्राज्य के शाही परिवारों की कब्रगाह है। इनका निर्माण मिट्टी, ईंट और पत्थर से किया गया। यह एक टीलानुमा आकृति है। 18वीं शताब्दी के बाद अहोम राजाओं ने हिंदू दाह संस्कार पद्धति को अपना लिया। यह भारतीय ज्ञान परंपरा के लिए गौरव की बात है। अहोम साम्राज्य की स्थापना 1228 में ब्रह्मपुत्र घाटी में हुई थी। यह साम्राज्य 600 वर्ष तक चला। अहोमों की सेना सशक्त थी। उन्होंने ब्रह्मपुत्र में नौका सेतु बनाने की तकनीक भी सीखी थी। लसित बोरफुकन के नेतृत्व में अहोम ने 1671 में सरायघाट के युद्ध में औरंगजेब की मुगल सेना को हराया था। बोरफुकन के पराक्रम की स्मृति में राष्ट्रीय रक्षा अकादमी के सर्वश्रेष्ठ कैडेट को बोरफुकन स्वर्ण पदक 1999 से दिया जाता है। प्रधानमंत्री मोदी ने बोरफुकन की विशाल प्रतिमा का लोकार्पण इसी वर्ष किया था।

भारत के कोने-कोने में राष्ट्र जीवन के भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में सक्रिय लोगों की बहुतायत है। नरसिंह रेड्डी ब्रिटिश सत्ता से संघर्ष करने वाले आंध्र प्रदेश के लोकप्रिय नायक थे। उन्होंने सैकड़ों अंग्रेज सैनिकों को मारा था। इनका नाम राष्ट्रीय चर्चा में नहीं आया। बिरसा मुंडा भी इसी श्रेणी में आते हैं। देश में सांस्कृतिक महत्व के स्थलों की बहुतायत है। राष्ट्रीय महत्व के ऐसे स्थलों को सूचीबद्ध करना और खोदाई आदि साधनों द्वारा संरक्षित करना एएसआइ की जिम्मेदारी है। एएसआइ ने काफी कुछ किया है, लेकिन अभी भी बहुत कुछ किया जाना शेष है। स्मारकों का संरक्षण राष्ट्रीय कर्तव्य है। कुछ महत्वपूर्ण स्मारक लापता भी बताए जा रहे हैं। वर्ष 2018 में संस्कृति मंत्रालय से जुड़ी सिंधु सभ्यता की अध्ययन समिति ने हरियाणा के भिराना एवं राखीगढ़ी की खोदाई के अध्ययन को महत्व दिया था। इस पुरातात्विक क्षेत्र में कार्बन डेटिंग के अनुसार ईसा पूर्व 7000 से 6000 वर्ष की सभ्यता का अनुमान है। समिति के प्रमुख ने सिफारिश की थी कि कार्बन डेटिंग अध्ययन के परिणामों को ऋग्वेद, रामायण एवं महाभारत के समय-संदर्भ से जोड़कर समझा जाना चाहिए। भारत की सांस्कृतिक विभिन्नता पर सवाल उठाने वाले दुराग्रही हैं। वे सुमेरी सभ्यता को हड़प्पा से भी प्राचीन बताते हैं। वे हड़प्पा को सुमेरी सभ्यता की छाया मानते हैं। वे जल भरी सरस्वती और सूखी सरस्वती के बीच समय विभाजन नहीं देखते। ऋग्वेद में सरस्वती जल भरी हैं। यह तथ्य हड़प्पा से पुराना है। बेशक भारत में सुमेर और मिस्र से प्राचीन सभ्यताएं हैं। इन सभ्यताओं के संबंधों का अध्ययन ऋग्वेद के तथ्यों के आधार पर करना चाहिए।

अवधेश राजपूत

राष्ट्र सांस्कृतिक संपदा में अग्रणी है। संप्रति यूनेस्को की विश्व धरोहर सूची में 168 देशों के 1199 स्थल हैं। अफसोस कि इसमें भारत के 43 स्थल ही गणना में हैं। इटली भूक्षेत्र और जनसंख्या में भारत से बहुत छोटा है, लेकिन विश्व धरोहरों की सूची में इटली में 59 स्थल हैं। जर्मनी भी भारत से छोटा है, लेकिन उनकी धरोहरों की सूची लंबी (52) है। प्रसन्नता की बात है कि कुंभ को यूनेस्को ने विश्व विरासत सूची में सम्मिलित किया था। ऋग्वेद पहले से ही यूनेस्को की सूची में है। इसी तरह यूनेस्को के 'मेमोरी आफ एशिया पैसिफिक रीजनल रजिस्टर' में रामचरितमानस, पंचतंत्र और सहृदयलोक-लोकन भी सम्मिलित हैं। तीनों महत्वपूर्ण ग्रंथों के समावेशन से भारत को प्रसन्नता हुई है। रामचरितमानस के रचनाकार तुलसीदास, पंचतंत्र के रचनाकार विष्णु शर्मा एवं सहृदयलोक-लोकन के आनंदवर्धन स्मरणीय हैं। इन्होंने पूरे विश्व को प्रभावित किया है। संस्कृति और दर्शन भौगोलिक सीमा में नहीं बांधे जा सकते।

भारत में विज्ञान, दर्शन और कला के क्षेत्र में बड़ा काम हुआ है। तमाम विदेशी विद्वान भारतीय संस्कृति के प्रशंसक रहे हैं और हैं। कुछेक विद्वान भारतीय विद्वानों की मेधा के प्रति ईर्ष्यालु भी जान पड़ते हैं। गणित भारतीय खोज है। पंडित नेहरू ने 'डिस्कवरी आफ इंडिया' में एक गणितज्ञ डान जिंग की पुस्तक 'नंबर' का उद्धरण दिया है। जिंग ने लिखा था कि, 'अनजाने में हिंदुओं की स्थान मूल्य के सिद्धांत की खोज लोकव्यापी महत्व की है। आश्चर्य है कि यूनानी गणितज्ञों ने इसकी खोज क्यों नहीं की।' जिंग यूनानी गणितज्ञों द्वारा अंकों की खोज न कर पाने से आहत जान पड़ते हैं। 'मैथमेटिक्स फार दि मिलियन' में व्हग वेन ने सटीक उत्तर दिया है, 'हिंदुओं ने ही इस दिशा में कदम क्यों बढ़ाया? इस प्रश्न का उत्तर हम हल नहीं कर सकते अगर हम बौद्धिक विकास को कुछ प्रतिभाशाली लोगों के प्रयास का ही परिणाम मानेंगे।' कुछ विद्वान भारतीय ज्ञान, विज्ञान, दर्शन और संस्कृति के लिए भारतीय धरोहरों की ओर नहीं देखते। स्मारक सभ्यता और संस्कृति के संवाहक हैं और राष्ट्र की धरोहर हैं।

विश्व का सबसे बड़ा विश्वविद्यालय तक्षशिला था। अर्थशास्त्र के लेखक कौटिल्य तक्षशिला के आचार्य थे। दुनिया के पहले व्याकरणकर्ता पाणिनि भी यहीं के थे। पतंजलि और चरक यहीं के थे। अंकशास्त्र यूरोप के देश नहीं खोज पाए तो इसका मूल कारण है यूरोप में ज्ञान, विज्ञान और दर्शन की सामूहिक चेतना का अभाव। साहित्य, संगीत और सभी कलाएं भारतीय संस्कृति के मुख्य अंग हैं। यहां गांधार, मथुरा एवं सारनाथ तीन प्रमुख शैलियां रही हैं। बुद्ध की पहली मानवीय कृतियां गांधार कला की देन हैं। माना जाता है कि इस सृजन में यूनानी कला और भारतीय दर्शन का मेल है। राष्ट्र जीवन के सभी कर्तव्यों एवं क्षेत्रों में भारत अग्रणी रहा है। मथुरा, काशी, अयोध्या, केदारनाथ, बदरीनाथ, सारनाथ, मदुरै, तिरुपति, गुरुवायुर, कन्याकुमारी, मैसुरु, कांचीपुरम और रामेश्वरम आदि अंतरराष्ट्रीय आकर्षण हैं। ये सभी केंद्र अंतरराष्ट्रीय धरोहर घोषित किए जाने योग्य हैं। भारत स्वयं में वैश्विक संस्कृति की धरोहर है।

(लेखक उत्तर प्रदेश विधानसभा के पूर्व अध्यक्ष हैं)

response@jagran.com

चीन का दबदबा खत्म करने का अवसर

डा. जयंतीलाल भंडारी

उम्मीद है निर्यात बढ़ाने के मद्देनजर आम बजट में जो प्रविधान किए गए हैं, उद्योग जगत उनका उपयोग करेगा

इस समय भारत के पास चीन से आयात घटाने और वैश्विक निर्यात में उसके दबदबे को खत्म करने का एक बड़ा मौका है। इस अवसर के तीन प्रमुख आधार हैं। पहला, संसद में वित्त वर्ष 2024-25 के लिए पेश आम बजट में किए गए प्रविधानों से भारत के आयात घटने एवं निर्यात बढ़ने की संभावना है। दूसरा, चीन से निकलते बड़े उद्योगों, कंपनियों और निवेश के भारत में आने की सबसे अधिक उम्मीद है। इससे भारत का मैन्यूफैक्चरिंग सेक्टर मजबूत होगा। तीसरा, चीन प्लस वन रणनीति के तहत भारत खुद को दुनिया के समक्ष एक भरोसेमंद देश के रूप में पेश कर निर्यात बढ़ा सकता है। अमेरिका सहित यूरोपीय एवं कई विकसित देश इन दिनों चीन से आयात घटाने के लिए उसके उत्पादों पर जिस तरह असाधारण आयात प्रतिबंध लगा रहे हैं, उससे इन देशों में भारत के उत्पादों का निर्यात बढ़ने की आशा है। यकीनन इस बार का बजट उद्योगों को समृद्ध करने वाला भी है। इसमें मैन्यूफैक्चरिंग सेक्टर को मजबूत करते हुए आयात घटाने एवं निर्यात बढ़ाने के अभूतपूर्व प्रविधान किए गए हैं। इससे चीन का भारतीय बाजारों पर जो प्रभाव बना हुआ है, उसमें कमी लाने में मदद मिल सकती है। अभी करीब 118.41 अरब डालर के द्विपक्षीय व्यापार के साथ चीन भारत का एक बड़ा व्यापारिक साझेदार बना हुआ है। पिछले वित्त वर्ष 2023-24 में चीन से भारत का आयात 101.75 अरब डालर था, जबकि चीन को भारत का निर्यात 16.66 अरब डालर था।

मैन्यूफैक्चरिंग सेक्टर निर्यात और रोजगार सृजन दोनों में अहम योगदान देता है। इसके प्रोत्साहन के लिए वित्त मंत्री ने बजट में देश के 100 शहरों में प्लग एंड प्ले वाले औद्योगिक पार्क बनाने की घोषणा की है। उद्यमी को ऐसे औद्योगिक पार्क में जाकर सिर्फ उत्पादन शुरू करना होता है। इससे कम से कम 100 प्रकार की वस्तुओं का बड़े पैमाने पर उत्पादन हो सकता है। बजट में सूक्ष्म, लघु एवं मध्यम उद्योगों (एमएसएमई) को निर्यात बढ़ाने के मद्देनजर सशक्त बनाने की भी बात है। सरकार ने जरूरी इकोसिस्टम को तैयार कर ठंडे पड़े मैन्यूफैक्चरिंग सेक्टर में जान फूंकने और उत्पादन आधारित प्रोत्साहन स्कीम को मजबूती देने के प्रविधान किए हैं। मशीनरी की खरीदारी के लिए एमएसएमई के लिए क्रेडिट गारंटी स्कीम भी लांच की गई है। इसके तहत 100 करोड़ रुपये तक के लोन की गारंटी होगी। वैश्विक वित्तीय दिग्गज नोमूरा ने अपनी रिपोर्ट में कहा है कि चीन से ग्लोबल कंपनियां बाहर निकल रही हैं, जिसका बड़ा फायदा भारत को मिलता दिख रहा है। इलेक्ट्रानिक्स, आटोमोबाइल, कैपिटल गुड्स, सेमीकंडक्टर, एनर्जी, फार्मास्युटिकल्स सेक्टर की कंपनियां भारत के दरवाजे पर दस्तक दे रही हैं। भारत को इनको हरसंभव सुविधा देकर स्वागत करना चाहिए।

मैन्यूफैक्चरिंग से निर्यात बढ़ाने में मिलेगी मदद। फाइल

इन दिनों यूरोपीय, अमेरिका और अन्य कई देश चीन से आयात के बढ़ते खतरों के मद्देनजर चीनी आयात पर प्रतिबंध लगाते हुए दिखाई दे रहे हैं। इस कड़ी में हाल में यूरोपीय आयोग ने चीन में बने इलेक्ट्रिक वाहनों पर 48 प्रतिशत तक आयात शुल्क लगाना सुनिश्चित किया है। पिछले कई वर्षों से यूरोपीय देशों की चीन से आयात पर शुल्क की दरें 10 प्रतिशत तक सीमित रही हैं। ऐसे में विभिन्न देशों द्वारा चीन से आयात होने वाले अनेक उत्पादों पर लगातार बढ़ता शुल्क चीन के आयात को हतोत्साहित करने की एक अहम पहल है। अब इन देशों में भारत से निर्यात की संभावना बढ़ी है। बीते दिनों विदेश मंत्री एस. जयशंकर ने भी अपने एक संबोधन में कहा था कि चीन के साथ कारोबार असंतुलन एक बड़ा मुद्दा है। चीन के साथ सीमा पर चल रहे तनाव के बावजूद वहां से आयात में हो रही लगातार वृद्धि पर उन्होंने भारतीय उद्योग जगत को भी आड़े हाथों लिया और पूछा कि 'क्या आप उसके साथ कारोबार करेंगे, जो आपके ड्राइंग रूप में घुस कर आपके घर को नुकसान पहुंचा रहा हो।' उन्होंने कहा कि 'हमें चीन के साथ राष्ट्रीय सुरक्षा की संवेदनशीलता को भी ध्यान में रखना होगा। जहां तक संभव हो भारत में बनाएं, भारत में खरीदें। जो राष्ट्रीय हित में है, वह लंबी अवधि में कारोबार के हित में भी होगा।'

निःसंदेह इसके लिए देश के लोगों को चीनी उत्पादों की जगह स्वदेशी उत्पादों के उपयोग के नए संकल्प के साथ आगे बढ़ना होगा। देश की बड़ी कंपनियों को भी शोध एवं नवाचार के क्षेत्र में तेजी से आगे बढ़ना होगा। चीन से व्यापारिक असंतुलन की गंभीर चुनौती के लिए सिर्फ सरकार ही जिम्मेदार नहीं है। चीन के साथ व्यापार असंतुलन के लिए सीधे तौर पर देश का उद्योग-कारोबार और देश की कंपनियां भी जिम्मेदार हैं, जिनके द्वारा कलपुर्जे सहित संसाधनों के विभिन्न स्रोत विकसित करने में अपनी प्रभावी भूमिका नहीं निभाई गई है। जिस तरह यूरोपीय संघ और अन्य विकसित देशों ने चीन से आयात नियंत्रित करने के लिए कुछ कदम उठाए हैं, उसी तरह भारत सरकार को भी राष्ट्रीय सुरक्षा के लिए खतरा बने चीन के साथ तेजी से बढ़ते हुए व्यापार घाटे को नियंत्रित करने के लिए रणनीतिक रूप से आगे बढ़ना होगा। हम उम्मीद करें कि भारतीय बाजार में चीन का दबदबा खत्म करने और भारत से निर्यात बढ़ाने के मद्देनजर आम बजट में जो प्रविधान किए गए हैं, उद्योग जगत उनका कारगर उपयोग करेगा। साथ ही नोमूरा ने चीन से ग्लोबल कंपनियों के बाहर निकलने के बीच सबसे बड़ा फायदा भारत को मिलने की जो संभावना बताई है, उसका भारत सरकार द्वारा रणनीतिक रूप से लाभ उठाया जाएगा। ऐसा होने पर निश्चित रूप से भारतीय बाजार में चीन का दबदबा खत्म करने में सफलता मिलेगी।

(लेखक एक्रोपोलिस इंस्टीट्यूट आफ मैनेजमेंट स्टडीज एंड रिसर्च, इंदौर के निदेशक हैं)

response@jagran.com

ऊर्जा

स्व-निर्भरता

स्व-निर्भरता से आशय है-किसी भी उद्देश्य की सिद्धि के लिए केवल अपने ऊपर ही निर्भर रहना। यह एक उच्च स्तर का गुण है। यदि यह किसी के व्यक्तित्व में समाहित है, तो वह व्यक्ति तनाव से स्वतः ही मुक्ति पा जाता है। हमारा जीवन आरंभ से लेकर अंत तक आवश्यकताओं पर ही टिका रहता है। इन आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए हम स्वयं पर भी निर्भर हो सकते हैं एवं दूसरों पर भी। स्व-निर्भरता हमें स्वतंत्रता की ओर अग्रसर करती है, जबकि दूसरों पर निर्भर रहना कहीं न कहीं हमें अधीनता की ओर धकेल देता है। अपना कोई कार्य संपन्न करने के लिए यदि हम दूसरों पर निर्भर हैं तो निश्चित रूप से हम यह नहीं कह सकते कि हमारा कार्य कब एवं किस स्तर पर संपन्न हो पाएगा। इसके विपरीत यदि हम स्वतः ही अपने कार्य के लिए शुरुआत करें तो पूर्णरूपेण समर्पण के साथ अपने उद्देश्य की सिद्धि में लग जाएंगे एवं कार्य को अपेक्षाकृत शीघ्र पूर्ण कर सकेंगे।

सांसारिक स्व-निर्भरता के साथ-साथ वैचारिक स्व-निर्भरता भी आवश्यक है। इससे आशय है कि किसी भी विषय पर अपना दृष्टिकोण अथवा सोच को व्यक्त करने के लिए हमें किसी से अनुमति न लेनी पड़े। हम स्वतंत्र रूप से किसी भी विषय के बारे में सोच सकें एवं अभिव्यक्त कर सकें। स्वनिर्भर व्यक्ति सदैव चिंतारहित एवं स्वतंत्र रहता है, क्योंकि उसे अपने विचारों, उद्देश्यों एवं कार्यों की सिद्धि के लिए किसी अन्य के सहारे की आवश्यकता नहीं होती। यदि हम अपनी आजीविका के लिए स्वनिर्भर हैं तो निःसंदेह हमारे मन-मस्तिष्क में किसी भी तरह की चिंता विद्यमान नहीं होगी। इसके विपरीत यदि हम अपने छोटे-छोटे दैनिक खर्चों के लिए भी पूर्ण स्वतंत्र नहीं हैं, तो कहीं न कहीं हमारा मन परतंत्रता के भाव का अनुभव करेगा। इसलिए हमें स्वनिर्भरताजनित स्वतंत्रता एवं सुख की प्राप्ति के लिए सदैव प्रयासरत रहना चाहिए।

प्रेरणा अवस्थी

विवाह पूर्व रक्त जांच की जरूरत

देवेंद्रराज सुथार

विवाह से पहले रक्त परीक्षण कर लोग थैलेसीमिया की चुनौती को दूर करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं

विश्व स्वास्थ्य संगठन के अनुसार, भारत में हर साल थैलेसीमिया से पीड़ित सात से 10 हजार बच्चे पैदा होते हैं। यह चिंताजनक संख्या देश में थैलेसीमिया और इसके आनुवंशिक संचरण के बारे में जागरूकता की कमी को उजागर करती है। दरअसल थैलेसीमिया एक आनुवंशिक रक्त विकार है, जो शरीर की हीमोग्लोबिन बनाने की क्षमता को प्रभावित करता है, जिससे गंभीर एनीमिया और अन्य स्वास्थ्य जटिलताएं होती हैं। अगर थैलेसीमिया जीन के वाहक दो लोग (जिन्हें थैलेसीमिया माइनर के रूप में जाना जाता है) एक-दूसरे से विवाह करते हैं, तो इस बात का अधिक जोखिम होता है कि उनके बच्चे थैलेसीमिया मेजर के साथ पैदा होंगे। शादी से पहले कुंडली मिलाने का सांस्कृतिक महत्व है, लेकिन थैलेसीमिया जैसे आनुवंशिक विकारों के संचरण को रोकने के लिए जोड़े की रक्त रिपोर्ट का मिलान भी उतना ही महत्वपूर्ण है।

थैलेसीमिया माइनर व्यक्ति आमतौर पर बिना किसी महत्वपूर्ण स्वास्थ्य समस्या के सामान्य जीवन जीते हैं, क्योंकि उनमें केवल एक दोषपूर्ण जीन होता है, लेकिन जब दो थैलेसीमिया माइनर विवाह करते हैं, तो प्रत्येक गर्भावस्था के साथ 25 प्रतिशत आशंका होती है कि उनके बच्चे को थैलेसीमिया मेजर रोग विरासत में मिलेगा। थैलेसीमिया मेजर से पीड़ित बच्चे कम जीवनकाल के साथ एक चुनौतीपूर्ण जीवन जीते हैं। उन्हें नियमित चिकित्सा देखभाल की आवश्यकता होती है।

दो थैलेसीमिया माइनर को विवाह नहीं करना चाहिए। इसका मुख्य कारण थैलेसीमिया मेजर वाले बच्चों के जन्म को रोकना है। उचित आनुवंशिक परामर्श और जांच के साथ इस जोखिम को काफी कम किया जा सकता है। आनुवंशिक परीक्षण एक सरल प्रक्रिया है जो यह निर्धारित कर सकती है कि कोई व्यक्ति थैलेसीमिया जीन का वाहक है या नहीं।

जेनेटिक परीक्षण की उपलब्धता के बावजूद भारत में आमजन शिक्षा और जागरूकता की कमी के कारण इसके महत्व से अनजान हैं। थैलेसीमिया के बोझ को दूर करने में सरकारी नीतियां और सहायता भी जरूरी है, जो विवाह से पहले आनुवंशिक जांच को अनिवार्य बनाए एवं उपचार के लिए वित्तीय सहायता प्रदान करें। विवाह से पहले रक्त परीक्षण की स्वीकृति अपनाकर समुदाय थैलेसीमिया चुनौती को दूर करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं। यह जरूरी है कि सरकारी निकाय और निजी संस्थान थैलेसीमिया के नए उपचार विकल्पों पर शोध में निवेश करने के लिए एक साथ आएं, जो इस बीमारी को दर्द रहित तरीके से ठीक कर सकें। विशेष रूप से जीन थेरेपी में निवेश करना जो गर्भावस्था के दौरान थैलेसीमिया पैदा करने वाले जीन उत्परिवर्तन को ठीक कर सकता है।

(लेखक स्वतंत्र टिप्पणीकार हैं)

मेलबाक्स

अर्थव्यवस्था की रीढ़ है उद्योग जगत

'भारत को विकसित बनाने की चुनौतियां' शीर्षक से लिखे आलेख में संजय गुप्त ने मोदी सरकार की तीसरी पारी के पहले आम बजट का विश्लेषण किया है और देश में किसी भी तरह के टैक्स की चोरी न हो इसकी व्यवस्था करना भी जरूरी बताया है, क्योंकि इससे ही देश विकसित हो सकता है। देश के प्रथम प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू ने भी देश की आर्थिक व्यवस्था की मजबूती के लिए देश में उद्योगीकरण को बढ़ावा देना जरूरी माना था। किसानों और अन्य वर्ग विशेष को जो मुफ्त की सुविधाएं सरकार की तरफ से दी जाती हैं उसमें भी सबसे बड़ा योगदान कारपोरेट जगत द्वारा दिए गए टैक्स का ही होता है। हालांकि सिर्फ आम बजट से ही उद्योग-धंधों के विकास की उम्मीद नहीं की जा सकती, क्योंकि बजट तो देश के हरेक क्षेत्र और वर्ग को ध्यान में रखकर तैयार किया जाता है। मोदी सरकार को बजट के बाद भी उद्योग-धंधों की दशा सुधारने के लिए ज्यादा से ज्यादा काम करना चाहिए। उद्योग-धंधे देश की अर्थव्यवस्था की रीढ़ होते हैं, क्योंकि वे देश के खजाने को भरते हैं और भारी मात्रा में रोजगार उपलब्ध कराते हैं। सरकार को टैक्स व्यवस्था इतनी आसान कर देनी चाहिए कि कंपनियां आसानी से अपना टैक्स सरकारी खजाने में जमा करा सकें। वैसे सरकारों को उद्योग जगत के टैक्स पर ही नजर नहीं रखनी चाहिए, बल्कि इनके व्यापार की राह में आने वाली बाधाओं को दूर करने के प्रयास भी प्राथमिक आधार पर करने चाहिए। कंपनियों को टैक्स में भी छूट मिलनी चाहिए, ताकि इन पर ज्यादा वित्तीय बोझ न पड़े, क्योंकि अगर इन पर वित्तीय बोझ बढ़ेगा तो ये उत्पादन घटाएंगी, रोजगार देने में असमर्थ होंगी। यह स्थिति देश की आर्थिक व्यवस्था को कमजोर कर सकती है। कुल मिलाकर हर योजना एवं नीति में संतुलन होना चाहिए।

raju09023693142@gmail.com

केंद्र और राज्य मिलकर करें काम

विपक्ष ने आम बजट का अंधविरोध, संसद में हंगामा करने के अतिरिक्त कुछ नहीं किया। केवल कुर्सी बचाओ बजट कहकर अपने कार्य की इतिश्री कर दी। जिन दो राज्यों बिहार और आंध्र प्रदेश को विशेष पैकेज देने का अंधविरोध किया गया है, वह पैकेज कुल बजट का मात्र डेढ़ प्रतिशत है। इसी कांग्रेस ने अपने घोषणा पत्र में आंध्र प्रदेश को दस वर्ष तक विशेष पैकेज देने का वादा किया था। बिहार का विशेष पैकेज अधिकतर इन्फ्रास्ट्रक्चर विकास के लिए है। यह विकास न केवल बिहार अपितु पड़ोस के राज्यों को भी बहुत लाभ पहुंचाएगा, लेकिन कांग्रेस और विपक्ष ने तो एक तरह से अघोषित असहयोग आंदोलन शुरू कर रखा है। यहां तक कि गैर राजनीतिक मंच नीति आयोग की बैठक का भी बायकाट कर दिया। यह कहना अतिश्योक्ति नहीं है कि विकसित भारत की सबसे बड़ी चुनौती अंधविरोधी विपक्ष है। नरेन्द्र मोदी सरकार ने अपनी प्राथमिकताएं युवा, महिला, किसान के लिए काफी कुछ किया है। युवाओं के लिए रोजगार सृजन के नए कदम उठाए गए हैं। कामकाजी महिलाओं के लिए होस्टल, क्रैच आदि बड़ी संख्या में बनाने की घोषणा की है। किसानों के लिए प्राकृतिक खेती को बढ़ावा, सस्ते उर्वरक, सस्ते ऋण, एमएसपी को बढ़ावा आदि कदमों की घोषणा की गई है, लेकिन कांग्रेस किसान संगठनों को एमएसपी गारंटी कानून के लिए उकसा रही है, जो मांग सर्वथा अव्यावहारिक है। इन किसान संगठनों में किसान कम, राजनीतिक लोग और आंदोलनजीवी अधिक हैं। इसलिए इनका इरादा किसी समझौते पर पहुंचना नहीं, पहले की तरह हंगामा करने का अधिक है। उदाहरण के लिए अधिकतर किसान संगठनों ने पंजाब विधानसभा चुनाव लड़ा था, पर एक भी सीट नहीं जीती थी। 26 जनवरी को लाल किले का उपद्रव तो पूरे देश ने देखा ही था। विकसित भारत के लिए विशाल धन की जरूरत होगी। सरकार के कर संग्रह के स्रोत सीमित हैं। इनकम टैक्स में तो बहुत ज्यादा चोरी है। 140 करोड़ के देश में मात्र ढाई करोड़ के लगभग लोग इनकम टैक्स देते हैं। विकसित भरत के लिए सभी राज्य सरकारों और केंद्र सरकार को मिलकर कार्य करना होगा। दुर्भाग्य से यह नहीं हो रहा है।

सीपी बंसल, दिल्ली

इस स्तंभ में किसी भी विषय पर राय व्यक्त करने अथवा दैनिक जागरण के राष्ट्रीय संस्करण पर प्रतिक्रिया व्यक्त करने के लिए पाठकगण सादर आमंत्रित हैं। आप हमें पत्र भेजने के साथ ई-मेल भी कर सकते हैं।
अपने पत्र इस पते पर भेजें :
दैनिक जागरण, राष्ट्रीय संस्करण,
डी-210-211, सेक्टर-63, नोएडा
ई-मेल : mailbox@jagran.com

संस्थापक-स्व. पूर्णचन्द्र गुप्त, पूर्व प्रधान संपादक-स्व. नरेन्द्र मोहन, नॉन एग्जीक्यूटिव चेयरमैन-महेन्द्र मोहन गुप्त, प्रधान संपादक-संजय गुप्त, जागरण प्रकाशन लि. के लिए: नीतेन्द्र श्रीवास्तव द्वारा 501, आई.एन.एस. बिल्डिंग, रफी मार्ग, नई दिल्ली से प्रकाशित और उन्हीं के द्वारा डी-210, 211, सेक्टर-63 नोएडा से मुद्रित, संपादक (राष्ट्रीय संस्करण) -विष्णु प्रकाश त्रिपाठी*
दूरभाष : नई दिल्ली कार्यालय : 011-43166300, नोएडा कार्यालय : 0120-4615800, E-mail: delhi@nda.jagran.com, R.N.I. No. DELHIN/2017/74721 *इस अंक में प्रकाशित समस्त समाचारों के चयन एवं संपादन हेतु पी.आर.बी. एक्ट के अंतर्गत उत्तरदायी। समस्त विवाद दिल्ली न्यायालय के अधीन ही होंगे। हवाई/रेल शुल्क ₹-2 अतिरिक्त।
****

पौधों के बदले नाम

मानव संसार धीरे-धीरे शालीन हो रहा है, इसी कड़ी में पहली बार वनस्पतिशास्त्रियों ने निर्णय लिया है कि 200 से अधिक पौधों, कवक और शैवाल प्रजातियों के नामों को बदला जाएगा। सदियों से इन प्रजातियों के ऐसे नाम रखे जाते रहे हैं, जिनसे नस्लवाद की बू आती है। मध्ययुगीन बर्बरता की वजह से भी खासकर अफ्रीका में पाई गई विभिन्न प्रकार की वनस्पतियों के नाम नस्लीय आधार पर रखे गए थे। एक लंबा दौर था, जब अफ्रीकी देशों में लोगों और वहां की संस्कृति के साथ ही वहां की प्रकृति को भी हिकारत भरी निगाहों से देखा गया। शायद यह वही दौर था, जब अफ्रीकियों को दास बनाकर दुनिया की बदनाम दास मंडियों में बेचा जाता था। अनेक नाम ऐसे रखे गए, जो स्थानीय बोलियों में बिल्कुल गाली की तरह थे। वनस्पतियों के नाम रखते हुए 'कैफ्रा' शब्द का सर्वाधिक इस्तेमाल किया गया। अब चूंकि पूरी दुनिया में रंगभेद और नस्लवाद के खिलाफ निरंतर आंदोलन चलते रहे हैं, तो वनस्पति विज्ञान के विशेषज्ञों का यह फैसला बहुत सुखद और स्वागतयोग्य है। पहली बार, शोधकर्ताओं ने ऐसे वैज्ञानिक नामों को खत्म करने के लिए मतदान किया है, जो आपत्तिजनक हैं। ये ऐसे शब्द या नाम हैं, जिनका उपयोग ज्यादातर दक्षिणी अफ्रीका के अश्वेतों के खिलाफ किया जाता रहा है।

मैड्रिड में आयोजित अंतरराष्ट्रीय वनस्पति कांग्रेस में इन बदलावों के पक्ष में बाकायदा मतदान हुआ। पूरी सावधानी बरतते हुए गुप्त मतदान किया गया, नाम सुधार के पक्ष में 351 वोट पड़े, जबकि विरोध में 205। मिसाल के लिए, इसका एक बड़ा लाभ यह होगा कि साल 2026 से तटीय मूंगा जैसे पौधों को औपचारिक रूप से एरिथ्रिना कैफ्रा के बजाय एरिथ्रिना एफ्रा कहा जाएगा। नेल्सन मंडेला यूनिवर्सिटी (एनएमयू) के वनस्पति विशेषज्ञ गिदोन स्मिथ कहते हैं कि हमें इस प्रक्रिया में हमारे सहयोगियों से वैश्विक समर्थन का पूरा भरोसा था, भले ही वोट का नतीजा करीबी रहने वाला था। बेशक, नस्लभेदी या रंगभेदी नामों को बदलना जरूरी था, ताकि नफरत के आदिम दौर से पीछा छुड़ाया जा सके। बदलाव के पक्षधर वैज्ञानिकों को शायद शुरू में परेशानी और विरोध का सामना करना पड़ेगा, बहुत सारी किताबों को फिर प्रकाशित करने की जरूरत पड़ेगी, पर यह फैसला हर दृष्टि से गरिमापूर्ण और न्यायपूर्ण है। किसी भी किताब में अपशब्दों की कतई जरूरत नहीं है। निरंतर सभ्य और शालीन समाज के निर्माण के लिए ऐसे सुधार की कोशिश लंबे समय से जारी थी। इससे नाम सुधार की समग्र प्रक्रिया को बल मिलेगा।

अनगिनत शब्द हैं, जो किसी न किसी मानव समूह के लिए अपमानजनक हैं। ऐसे में 200 वनस्पतियों के नाम बदलने का फैसला प्रेरणा की वजह बनेगा।

समाज में व्याप्त ऐसे अनगिनत शब्द हैं, जो किसी न किसी मानव समूह या वर्ग के लिए अपमानजनक हैं। ऐसे में, एक साथ 200 नाम बदलने का फैसला प्रेरणा की वजह बनेगा। शायद हर देश को अपने स्तर पर अपमानजनक नामों से छुटकारा पाना होगा। बहरहाल, वनस्पति विज्ञान में अब नए नाम रखते हुए भी काफी सावधानी बरतने का इरादा है। तमाम वैज्ञानिक सहमत हैं कि अब नाम ऐसे नहीं रखे जाएंगे, जिनसे कोई आहत हो। मसलन, यदि अकेले ऑस्ट्रेलिया की बात करें, तो वहां जल्द ही सबसे बड़ी चुनौती उन हजारों नई प्रजातियों के नामकरण की होगी, जिनकी खोज हो चुकी है या होने वाली है। पिछले 50 वर्षों में लगभग 7,000 ऑस्ट्रेलियाई पौधों की प्रजातियां दर्ज हुई हैं, जिनका नामकरण होना बाकी है। ऐसे में, 200 वनस्पतियों के नामों में बदलाव के साथ यह महज एक शुरुआत है।

हिन्दुस्तान | 75 साल पहले

29 जुलाई, 1949

उत्पादन और बिक्री

उद्योगों के संबंध में केन्द्रीय सलाहकार कौंसिल की बैठक की कार्रवाई ने एक नई समस्या की ओर हमारा ध्यान आकर्षित किया है। अब तक उत्पादन वृद्धि को देश को बिगड़ी हुई आर्थिक अवस्था का एकमात्र रामबाण इलाज बताया जाता था। किन्तु अब यह नया तथ्य सामने आ रहा है कि केवल उत्पादन बढ़ाते जाने मात्र से समस्या हल नहीं होगी। हमको साथ ही तैयार माल को खपाने का भी प्रबंध करना होगा। यदि तैयार माल समय पर नहीं निकाला जा सका तो वह कारखानों में जमा होता जायेगा। उस अवस्था में कारखानों को काम बन्द करना होगा। एक ओर मजदूर बेकार हो जायेंगे तो दूसरी ओर और उत्पादन घट जायेगा। नतीजा यह होगा कि आन्तरिक शान्ति और आर्थिक समृद्धि के जो सपने देखे जा रहे हैं, वे हवा में उड़ जायेंगे।

उद्योग मंत्री डा. श्यामाप्रसाद मुखर्जी ने बताया है कि सन् १९४८ के प्रथम छः महीनों की तुलना में इस वर्ष के प्रथम छः महीनों में देश के महत्वपूर्ण उद्योगों में एकाध अपवाद को छोड़कर उत्पादन में वृद्धि हुई है। जहां कोयला, इस्पात, सीमेण्ट, कागज, सूत, चाय, शक्कर और नमक का उत्पादन बढ़ा है, वहां कपड़े का उत्पादन ११ करोड़ गज घट गया है। यह आश्चर्य का विषय है कि जिस वस्तु का उत्पादन घटा है, उसी का स्टाक जमा हो गया है। कपड़े के जमा-शुदा स्टाक के संबंध में पिछले दिनों चिन्ताजनक समाचार प्रकाशित हुए थे। उद्योग मंत्री ने आश्वासन दिया है कि स्थिति उतनी चिन्ताजनक नहीं है, जितनी उन समाचारों से प्रकट होती थी। ३६० कपड़ा मिलों के स्टाक को ध्यान में रखकर यह निष्कर्ष निकाला गया है कि उनके पास जमा कपड़े और सूत के स्टाक उनके करीब छः सप्ताह के उत्पादन से अधिक नहीं हैं। कपड़े का स्टाक जमा होने का मुख्य कारण यह बताया गया है कि पाकिस्तान ने सन् १९४८ के समझौते के अनुसार निश्चित मात्रा में कपड़ा नहीं खरीदा। कुछ प्रांतों और रियासतों ने भी समय पर मिलों से माल नहीं उठाया। केन्द्रीय सरकार ने ऐसे उपायों का अवलम्बन करना प्रारम्भ कर दिया है, जिनके फलस्वरूप आशा की जाती है कि कपड़े का जमा स्टाक खत्म हो जायेगा और मिलों के काम बन्द करने की नौबत नहीं आयेगी। इन उपायों में एक उपाय यह होगा कि विदेश से कपड़े और सूत के आयात को सख्ती के साथ रोका जायेगा।

बढ़ती विषमता का विष कौन निगले

यह ठीक है कि पिछले दो दशकों में भारत में अति-दरिद्रता कम हुई है, लेकिन एक कटु सच यह भी है कि यहां अमीर और गरीब के बीच का फासला लगातार बढ़ता गया है।

हरजिंदर | वरिष्ठ पत्रकार

प्रसिद्ध अर्थशास्त्री कौशिक बसु ने केंद्रीय बजट की अपनी समीक्षा में भारत की बढ़ती आर्थिक विषमता का जिक्र किया है। उनका कहना है कि आर्थिक नीतियों को इसे कम करने के तरीके खोजने चाहिए। 16वें वित्त आयोग के अध्यक्ष और नीति आयोग के संस्थापक उपाध्यक्ष अर्थशास्त्री अरविंद पनगढ़िया ने भी कुछ सप्ताह पहले कहा था कि अब गैरबराबरी को नजरंदाज नहीं किया जा सकता। भारत की बढ़ती आर्थिक विषमता पिछले कुछ समय से काफी चर्चा में है। वर्ल्ड इनइक्वलिटी लैब से लेकर यूएनडीपी की रिपोर्टों में भी भारत को उन देशों में रखा गया है, जहां अमीर और गरीब के बीच का फासला सबसे ज्यादा है। यह ठीक है कि पिछले दो दशकों में भारत में अति-दरिद्रता कुछ कम हुई है। मनरेगा या सीधे अनाज बांटने की योजनाओं ने भुखमरी वाली गरीबी को कम किया है, मगर अमीर और गरीब का फासला लगातार बढ़ता गया है।

पिछली सदी की समाजवादी शब्दावली में कहा जाता था, अमीर अधिक अमीर होता जा रहा है और गरीब अधिक गरीब। अब गरीब अधिक गरीब भले न हो रहा हो, लेकिन अमीर जिस तेजी से ज्यादा अमीर होता जा रहा है, उससे फासला बहुत बढ़ गया है। बजट के बाद कांग्रेस सांसद शशि थरूर ने कहा कि इस बजट में विषमता को कम करने का कोई उपाय नहीं दिखता। उन्होंने यह भी याद दिलाया कि भारत में इस समय विषमता जहां पहुंच गई है, उतनी तो ब्रिटिश काल में भी नहीं थी। शशि थरूर जब यह कह रहे थे, तो दरअसल वह दुनिया के कई अर्थशास्त्रियों द्वारा तैयार किए गए एक शोध-पत्र का हवाला दे रहे थे, जो अभी कुछ ही महीने पहले जारी हुआ है। इस शोध-पत्र के अनुसार, इसके पहले भारतीय इतिहास में सबसे ज्यादा गैर-बराबरी 1930 में थी, जब देश की एक फीसदी आबादी के पास पहुंचने वाली आमदनी देश की कुल आमदनी का 20 फीसदी थी। बाद के दौर में इसमें गिरावट आ गई। मगर लगभग सौ साल बाद हम

वहां पहुंच गए हैं, जहां देश के एक फीसदी अमीरों के पास पहुंचने वाली आमदनी 20 फीसदी की पिछली बुलंदी को भी पार कर गई है।

बात जब ब्रिटिश दौर की हो रही है, तो प्रसंगवश ब्रिटेन की ओर भी झांक लेते हैं। आर्थिक गैर-बराबरी वहां भी हाल के वर्षों में काफी तेजी से बढ़ी है। पिछले दिनों आम चुनाव में जिस तरह वहां के लोगों ने लेबर पार्टी को भारी बहुमत दिया, उसका एक कारण यह भी बताया जाता है कि लोग आर्थिक दबावों की वजह से आजिज आ गए थे। और अब जब लेबर पार्टी जीत गई है, तो उसके सांसद ही दबाव डाल रहे हैं कि सबसे पहले गैर-बराबरी दूर करो। पार्टी का पूरा अमला इसी में सिर खपा रहा है कि इस अफसाने को कैसे अंजाम तक पहुंचाया जाए। वैसे, भारत में भी आम चुनाव के दौरान कांग्रेस ने इस मुद्दे के संकेत अपने घोषणापत्र में दिए थे। मगर चुनावी माहौल में इस पर कोई विमर्श होने के बजाय मंगलसूत्र और भैंस खोल ले जाने जैसी चर्चाएं ही खबरों में छाई रहीं।

भारत और ब्रिटेन ही क्यों, यह तो तकरीबन सारी दुनिया में हो रहा है। वर्ल्ड इनइक्वलिटी लैब की कोई भी सालाना रिपोर्ट उठा लीजिए, आपको तकरीबन हर जगह विषमता बढ़ती दिखाई देगी। अमेरिका तक में यही हो रहा है। इसे लेकर पहला आंदोलन भी वहीं शुरू हुआ था- ऑक्यूपाई वॉल स्ट्रीट। मगर समय के साथ इसके सुर ठंडे पड़ गए। अब कई अमेरिकी अर्थशास्त्री इस विमर्श में सिर खपा रहे हैं कि बढ़ती आर्थिक गैरबराबरी को समस्या माना भी जाए या नहीं? बेशक, वहां समस्या वैसी है भी नहीं, जैसी भारत जैसे कुछ देशों में है। तमाम विशेषज्ञ कह रहे हैं कि इसका समाधान आसान नहीं है। कुछ का तो कहना है कि दुनिया ने जो आर्थिक व्यवस्था अपनाई है, उसके कुएं में ही विषमता की भांग पड़ी है। आप कुछ भी कर लें, धन और संपत्ति का केंद्रीकरण लगातार बढ़ता ही जाएगा।

पहले यह माना जाता था कि विश्व-अर्थव्यवस्था को जब झटका लगता है, तब गैर-बराबरी अपने आप नीचे आ जाती है। यही प्लेग महामारी के समय हुआ था। यही पिछली सदी की पहली महा-आर्थिक मंदी के समय हुआ और यही दोनों विश्व युद्धों के बाद हुआ। मगर 21वीं सदी ने इस मिथक को भी तोड़ दिया है। 2008 के वित्तीय संकट के समय पूरी दुनिया की अर्थव्यवस्था हिल गई थी। बाद में, जब सब सामान्य हुआ, तो पता चला कि विषमता और बढ़ गई है। इसके बाद कोविड जैसी महामारी में जब पूरी दुनिया की अर्थव्यवस्था चक्कर खाकर गिर पड़ी थी और बहुत से लोगों के सिर पर अन्न और भोजन का संकट मंडराने लगा था, तब भी कुछ लोगों की ही संपत्ति लगातार बढ़ रही थी। गैरबराबरी अब हर आपदा में अपने लिए अवसर तलाश लेती है।

कुछ अर्थशास्त्री चेता रहे हैं कि ऐसा बहुत दिन नहीं चलेगा। इसी के साथ एक और चेतावनी नत्थी हो गई है कि आर्टिफिशियल इंटेलीजेंस, यानी कृत्रिम बुद्धिमत्ता धन के केंद्रीकरण व विषमता को और बढ़ा सकती है। यह भी कहा जा रहा है कि इसके साथ बढ़ती बेरोजगारी कभी भी विस्फोट का कारण बन सकती है।

बावजूद इसके कोई नहीं जानता कि इसका किया क्या जाए? पिछली एक सदी में अमीरों पर भारी टैक्स लगाने से लेकर, संपत्ति कर से लेकर उपभोग कर तक के प्रयोग हुए। हर बार गैर-बराबरी ने अपने लिए गुंजाइश तलाश ली। जहां ऐसे प्रयासों ने अर्थव्यवस्था की लय बिगाड़ी, वहां इसका नजला भी गरीबों पर ही गिरा। हम चाहें, तो ऐसा करने वालों की नीयत पर शक कर सकते हैं। यह भी माना जाता है कि जो अमीर थे, उन्होंने हर बार अपने लिए तमाम नियम-कायदों के बीच से रास्ते निकाल लिए। ठीक यहीं पर राजनीतिक अर्थशास्त्र की एक प्राचीन कहावत को भी याद कर लेना चाहिए- यह एक स्वर्णिम नियम है, जिसके पास स्वर्ण है, उसके पास नियम है। आर्थिक विषमता को हमेशा के लिए सुला देने की खातिर साम्यवादी व्यवस्थाएं कायम की गईं, जो अपने ही अंतरविरोधों से चरमरा गईं।

पिछली सदी तक दुनिया के पास समता को कायम करने और विषमता खत्म करने की कई विचारधाराएं थीं। मगर 21वीं सदी के आते-आते उनके महल खंडहर में बदल गए, जो अब लोगों को आकर्षित नहीं करते। जिन्हें समता कायम करने की ऐतिहासिक शक्तियां कहा जाता था, उन्हें अब कोई याद भी नहीं करता। पूरे इतिहास में किसी समस्या के सामने हम इतने असहाय कभी नहीं रहे।

(ये लेखक के अपने विचार हैं)

अन्य आयोजनों से पेरिस का ओलंपिक जलसा अलग क्यों

शारदा उगरा | वरिष्ठ पत्रकार

ओलंपिक खेलों की रणभेरी बजने से पहले हरेक मेजबान शहर को अंग्रेजीभाषी दुनिया के ताने सहने पड़ते हैं। मसलन, एथेंस समय से तैयार नहीं हो पाएगा। बीजिंग की हवा हर किसी का दम घोंट देगी। रियो में जीका वायरस के साथ यह शिकायत थी कि वहां के अपराधी चैंपियनों के मेडल और पत्रकारों के फोन छीन लेंगे। टोक्यो के बारे में आशंकाएं थीं कि कोविड के बुलबुले को वह कैसे संभाल पाएगा? लंदन (2012 ओलंपिक) का ऐसे आरोपों से बच जाने की वजह थी, जबकि वहां खेलों से पहले सबसे गंभीर मुद्दा सुरक्षा गार्डों की कमी का था।

अंग्रेजी मीडिया के (मुख्यतः ब्रिटिश व अमेरिकी) उपभोक्ता के रूप में भारतीयों के सामने हर ओलंपिक शुरू होने से पहले उसे किसी आपदा के रूप में पेश किया जाता है और यह विशेषकर गैर-अंग्रेजीभाषी देश में आयोजित वाले ओलंपिक खेलों में होता है। पेरिस के मेयर को तो यह साबित करने के लिए सीन नदी में कूदना पड़ा कि इसका पानी तैराकों के लिए साफ है। लंदन के *फाइनेंशियल टाइम्स* के मुताबिक, पेरिस एक महत्वाकांक्षी, पर जोखिम भरे ओलंपिक की मेजबानी कर रहा है। मगर हकीकत में, पेरिस इस आयोजन को फिजूलखर्ची के बजाय नए सिरे से गढ़ने का इरादा रखता है और इसका वायदा उसने यह कहकर किया है कि वह सबसे हरित, सबसे चिरस्थायी और सर्वाधिक लैंगिक समानता वाला ओलंपिक आयोजित कर रहा है। यह कोई आसान काम नहीं है। वहां तो पहले से ही इस खबर के खिलाफ सुगबुगाहट शुरू हो गई कि खेल गांवों के कमरे वातानुकूलित नहीं होंगे और फर्श के नीचे पाइप डालकर तापमान को छह डिग्री सेल्सियस कम किया जाएगा, इसीलिए अमेरिका, ब्रिटेन, ऑस्ट्रेलिया, जर्मनी, कनाडा और इटली अपने यहां से एसी खुद लाने की बात की। दुनिया के देशों के ऐसे ही दबाव में आयोजनकर्ताओं को 2,500 एसी किराये पर लेने को बाध्य होना पड़ा है। इसे विडंबना ही कहेंगे कि जो देश वैश्विक मंचों पर पर्यावरण के मुद्दे पर ज्यादा मुखर नजर आते हैं, उनको अपनी कथनी और करनी के बीच संतुलन बनाना इतना मुश्किल लग रहा है।

पहले ऐसे आयोजनों का मतलब भव्यता, चमकदार और बेहिसाब आतिशबाजी होता था, मगर इस बार ऐसा कुछ नहीं होगा।

बहरहाल, मई 2018 में पेरिस ने ईएसएस2024 नामक सॉलिडरिटी प्लेटफॉर्म, यानी एकजुटता मंच लॉन्च किया, जिसका मकसद खेलों के लिए करीब तीन अरब यूरो की खरीदारी और अनुबंधों के लिए एक अनूठा वितरण मॉडल तैयार करना था। बांग्लादेश के यूनुस सेंटर फॉर सोशल बिजनेस व फ्रांस के गैर-सरकारी संगठन लेस कैनॉक्स के साथ काम करते हुए आयोजकों ने शहरी नवीनीकरण के लिए प्रतिबद्ध स्थानीय उद्यमियों के साथ काम के अवसर पैदा करने की कोशिश की है। अंतरराष्ट्रीय ओलंपिक कमेटी की मार्च की घोषणा बताती है कि ओलंपिक खेलों के लिए ढांचागत निर्माण, खान-पान, फर्नीचर आदि के लिए 460 स्थानीय व्यवसायों को जोड़ा गया, जिनमें से नौ व्यवसायों के साथ 1.6 अरब यूरो के अनुबंध किए गए, जो खेल गांव व स्टेडियमों की साफ-सफाई व कपड़े धोने से जुड़े थे। प्लास्टिक के कचरे से दो आयोजन स्थल पर करीब 11,000 कुर्सियां बनाई गईं। आयोजन के लिए स्थायी खेल सुविधाएं दी गई हैं और ओलंपिक एक्वेटिक सेंटर को आयोजन के बाद सार्वजनिक तैराकी शिक्षण-प्रशिक्षण केंद्र बना दिया जाएगा।

सितंबर 2021 में अभिनव बिंद्रा फाउंडेशन द्वारा आयोजित एक ऑनलाइन कार्यक्रम में नोबेल पुरस्कार विजेता मोहम्मद यूनुस ने कहा था कि खेलों की सामाजिक ताकत का प्रभावी ढंग से उपयोग ही नहीं किया जाता। अगर हम ऐसे आयोजनों के आर्थिक लक्ष्य को बाधित किए बिना इस ताकत का इस्तेमाल सामाजिक लक्ष्यों को पूरा करने में करें, तो हमें खासा लाभ मिल सकता है।

पेरिस ने यूनुस द्वारा बताए गए तीन संकटों- ग्लोबल वार्मिंग, आर्थिक असमानता और बेरोजगारी से निपटने के लिए अनूठा तरीका खोजने का प्रयास किया है। मगर अब किराये की एसी का उपयोग बता रहा है कि सही इरादा होने पर भी पेरिस को अपमानित होना पड़ा। फिर भी, जैसा कि अभिनव बिंद्रा कहते हैं, पेरिस भविष्य के लिए बेंचमार्क बना सकता है, क्योंकि पहले ऐसे आयोजनों का मतलब होता था- भव्यता, चमक-दमक और बेहिसाब आतिशबाजी। मगर इस बार ऐसा नहीं हुआ है। रोशनी का यह शहर विश्व खेल को रास्ता दिखा सकता है।

(ये लेखिका के अपने विचार हैं)

मनसा वाचा कर्मणा

असली समस्या मानव मन

मनुष्य इतने संकटों और समस्याओं से कभी नहीं घिरा था, जितना इस समय घिरा है। समस्याएं बहुत हैं और नई किस्म की हैं, लेकिन हमारे पास जो समाधान हैं, वे पुराने हैं। बीते कल के समाधान आज के प्रश्नों के काम नहीं आते हैं। सभी तरफ से विकास हो रहा है और उसके साथ समस्याएं भी विकसित हो रही हैं।

कुछ लोग समझते हैं कि समस्याएं राजनीतिक हैं, इसलिए कोई राजनीतिक हल खोज लेने से सारी दिक्कत खत्म हो जाएगी। नहीं, मनुष्य की समस्याएं मूलतः राजनीतिक नहीं हैं। कुछ लोग सोचते हैं कि आर्थिक समस्याएं होंगी, वे हल हो जाएंगी, तो मनुष्य का जीवन शांति से भर जाएगा। वे भी भ्रांति में हैं। धन की कितनी ही उपलब्धि और संपदा की कितनी भी सुविधा मनुष्य के चित्त से दुख को दूर नहीं करती। तो फिर प्रश्न उठता है कि समस्या क्या है और इसका हल कैसे ढूंढ़ा जाए?

सतह पर देखने से लगता है, जैसे हजारों समस्याएं हैं और उन्हें एक-एक करके सुलझाना है। इतना समय किसके पास है? मजे की बात यह है कि समस्या एक ही है, अनेक नहीं। इस पर विश्वास नहीं होता। हमारी गलती यह है कि हम ऊपर ही ऊपर इलाज ढूंढ़ते हैं। विशेषज्ञों के पास जाते हैं, बैठकों में वैचारिक मंथन करते हैं। यह सब सिर्फ बौद्धिक तल पर चलता है। लेकिन ओशो और अन्य द्रष्टा कहते हैं कि मनुष्य की मूल समस्या आध्यात्मिक है, कहीं बहुत गहरे में मनुष्य के आंतरिक स्रोत से संबंधित है और उसे देखने के लिए जैसी गहरी आंखें चाहिए, वैसी गहरी आंखें किसी के पास नहीं हैं। हम बहुत छिछला और ऊपर-ऊपर देखते हैं और गहरे प्रवेश नहीं करते, क्योंकि गहरे देखना बहुत साहस का काम है। गहरे देखने के लिए साहस ही नहीं, बल्कि यह भी स्वीकार करना होगा कि शायद समस्या ऐसी हो, जिसका समाधान भी न हो सके।

दरअसल, मनुष्य की असली समस्या है उसका मन। मन का स्वभाव है समस्या बनाना, क्योंकि उसी पर वह जीवित रहता है। यह भली-भांति समझ लें कि मन का कभी समाधान नहीं हो सकता। इसलिए ओशो कहते हैं, मन की जड़ को काट दो। सिर्फ पत्तियों और शाखाओं को मत काटते रहो। ये लाखों हैं और इनको काटने से तुम जड़ को नहीं काट पाओगे और पेड़ बढ़ता जाएगा। यह और भी घना व बड़ा होता जाएगा। इसलिए पत्तियों के बारे में भूल जाओ। जड़ को काटो, फिर वृक्ष धीरे-धीरे सूख जाएगा।

मन को काटने का उपाय है ध्यान। मन तो सिर्फ धुंध है। मानें तो समस्या है और नहीं मानें, तो नहीं है, इसलिए मन से थोड़ी दूरी बनाएं। मन के खेल में शामिल न होकर उसे देखते रहें।

मन को काटने का एक ही उपाय है, ध्यान। मन तो सिर्फ धुआं या धुंध है। मानें तो समस्या है और नहीं मानें, तो नहीं है, इसलिए मन से थोड़ी दूरी बनाएं। मन के खेल में शामिल न होकर उसे देखते रहें। मन के शांत होने से समस्या पिघल जाएगी।

अमृत साधना

जो बाइडन | अमेरिकी राष्ट्रपति

अमेरिका की सबसे अच्छी बात यह है कि यहां राजाओं और तानाशाहों का शासन नहीं चलता, जनता शासन करती है। अतः इतिहास आपके (अमेरिकी मतदाताओं के) हाथों में है। सत्ता आपके हाथों में है। अमेरिका का विचार आपके हाथों में है।

अनुलोम-विलोम

अंतरराष्ट्रीय बाघ दिवस

बाघ बचाने की कोशिशों का सुखद नतीजा

जंगलों के खत्म होने, अनुकूल माहौल न मिलने और अनियोजित विकास की कीमत वन्यजीव चुकाते रहे हैं। बाघ भी अपवाद नहीं हैं। मगर उनको बचाने के लिए निरंतर किए जा रहे प्रयासों का ही प्रतिफल है कि अब बाघों की संख्या में वृद्धि दिख रही है। साल 2010 की ही बात है, जब इस जीव की आबादी अपने सबसे निचले स्तर पर थी और पूरे विश्व में महज 3,200 बाघ होने का अनुमान जताया गया था। मगर बाघों के अनुकूल माहौल वाले 13 देशों में अनवरत किए गए प्रयासों के कारण आज इनकी संख्या बढ़कर 5,574 हो चुकी है, जो वर्ष 2010 की तुलना में 74 फीसदी अधिक है। भारत में भी बाघों की आबादी बढ़ रही है। यह देश 3,500 से अधिक बाघों का बसेरा है और जिस तरह के प्रयास यहां किए जा रहे हैं, उससे इनकी संख्या में लगातार इजाफा ही हो रहा है।

इस सफलता का श्रेय प्रोजेक्ट टाइगर को दिया जा सकता है। पिछली सदी के सातवें दशक में तत्कालीन प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी ने उत्तराखंड में इस परियोजना की शुरुआत की थी। महज नौ बाघ अभयारण्यों में शुरू हुई इस परियोजना का अब काफी विस्तार हो चुका है। आज यह 18 राज्यों के 51 अभयारण्यों में चल रही है और बाघों को बचाने के अपने मूल उद्देश्य को पूरा करने में निरंतर आगे बढ़ रही है। इस परियोजना के तहत न सिर्फ बाघों की रक्षा के उपाय किए गए हैं, बल्कि देश की जनता में भी वन्यजीवों के प्रति प्रेम और जीवन-रक्षा की भावना जागरूक करने के प्रयास किए गए हैं। देखा जाए, तो प्रोजेक्ट टाइगर से बाघ अभयारण्यों के लिए ऐसा समन्वय तंत्र बनाया गया है, जिसमें वन्यजीव, आम जनता और सरकार, तीनों को फायदा हो रहा है।

इसी तरह की बात दुनिया के अन्य देशों के लिए भी कही जा सकती है। अंतरराष्ट्रीय बाघ दिवस ही इसलिए शुरू किया गया, ताकि विलुप्त होने से इसको बचाया जा सके। अच्छी बात यह है कि दुनिया ने इस संदेश को समझा और आज शायद ही किसी देश को यह बताने की जरूरत है कि वह अपने यहां बाघों की सुरक्षा कैसे करे? भारत भी अपने तईं लगातार इनकी सुरक्षा में जुटा है। जिस गंभीरता से यहां काम हो रहे हैं, बाघों की संख्या बढ़ने की ही खबर आती रहेगी। हां, इस राह में कुछ हल्की-फुल्की दिक्कतें भी आती रही हैं, लेकिन जिस तरह से तमाम सरकारें उनसे निपटती रही हैं, आगे भी निपटती रहेंगी। अगर बाघों को बचाने के प्रयास इसी तरह जारी रहे, तो स्वाभाविक ही हम कहीं बेहतर नतीजे पा सकेंगे।

सुमन सिंह, टिप्पणीकार

अब भी काफी काम किए जाने की जरूरत

बाघ पारिस्थितिकी-चक्र की अहम कड़ी हैं। यह मांसाहारी जीव प्रायः जंगल के बड़े शाकाहारी जानवरों को अपना निवाला बनाकर इस चक्र को संतुलित रखता है। वैज्ञानिकों का मानना है कि बाघ के विलोपन की दशा में धरती के पर्यावरण में भारी असंतुलन पैदा हो जाएगा, जिससे पृथ्वी की जैव-विविधता प्रभावित होगी और बहुत से जीव विलुप्त हो जाएंगे। यहां तक कि इसका मौसम भी बदल जाएगा और मनुष्य-जीवन की अनुकूलता खत्म हो जाएगी। बावजूद इसके, मानव जीवन और हरी-भरी मुस्कराती धरती के लिए इतने आवश्यक इस जीव का जीवन संकट में है, जिसके लिए जिम्मेदार कोई दैवीय आपदा या बीमारी नहीं, अपितु मनुष्य की लालसा, अवैध व्यापार और वन्यजीवों के रिहायशी क्षेत्रों का अतिक्रमण है।

निस्संदेह, दुनिया भर में बाघ को बचाने के लिए काम किए जा रहे हैं, लेकिन वे वास्तव में उम्मीदों पर खरे नहीं उतर पा रहे। जनजागरण की कमी और सरकारों की नीयत इसमें अहम भूमिका निभा रही है। नक्सली बागियों के प्रति नरम रुख भी खतरनाक है। तस्करों को मानो खुला हाथ दे दिया गया है। यहां सफारी की भी चर्चा होनी चाहिए, क्योंकि यह नाम ही अपने आप में असंवेदनशील है। इसका एक अर्थ होता है, शिकार के लिए साहसिक अभियान। कितना हास्यास्पद है कि बाघ संरक्षण के नाम पर ही सफारी कराई जाती हैं। दरअसल, जंगलों में पर्यटकों के भ्रमण और मौज-मस्ती से बेशक सरकारों को लाभ होता हो, लेकिन इससे वन्यजीवों के स्वाभाविक जीवन में खलल पड़ता है। उनकी निश्चिंतता और आनंद में बाधा उत्पन्न होती है। ऐसी दशा में वे अपने को असहज महसूस करते हैं। लिहाजा, मनुष्य का उनके क्षेत्रों में प्रवेश वर्जित होना चाहिए, लेकिन इसे मानता कौन है? वन्य-क्षेत्रों का अतिक्रमण बढ़ते जाने से वन्यजीवों और इंसानों के बीच संघर्ष बढ़ गया है। उनकी मांद तक इंसानों का पहुंच जाना गलत है।

प्रकृति ने बाघों को मांसाहारी बनाया है, इसलिए वे शिकार करते हैं। भूख और भय की अवस्था में ही वे हिंसक होते हैं, अन्यथा वे शांत, भावुक और समझदार जीव होते हैं। हिंसा उनकी फितरत नहीं होती। धरती की समग्रता के लिए उपयोगी कृति मानकर उनको संरक्षा देनी होगी। मनुष्य और उसकी व्यवस्था को उनकी हिंसात्मक विवशता में नहीं, बल्कि स्वयं में कमी ढूढ़नी होगी, अपने लोभ और लाभ को त्यागकर उनके क्षेत्रों से दूरी बनानी होगी, तभी वास्तव में कुछ हो सकता है। इसीलिए वन्यजीवों के प्रति लोगों को संवेदनशील बनाने के लिए अभियान चलाना चाहिए।

दिनेश सिंह, चिकित्सक

कल्पमेधा

हमारी वास्तविक गरीबी यह है कि हम दूसरों को सुधारने की अधिक से अधिक कोशिश करते हैं और खुद को सुधारने का कम से कम।

– शेक्सपियर

तकरार की नीति

पश्चिम बंगाल की मुख्यमंत्री ममता बनर्जी कब, किस मामले में क्या कदम उठा लेंगी, कई बार समझना मुश्किल होता है। नीति आयोग की बैठक में शिरकत करने का उनका रवैया भी कुछ वैसा ही था। जब विपक्षी धड़े के मुख्यमंत्रियों ने उस बैठक के बहिष्कार का आह्वान किया, तब ममता बनर्जी ने संघीय तकाजे को ऊपर रखते हुए उसमें जाने की घोषणा कर दी। वे उस बैठक में गईं भी, मगर चलती बैठक से तमतमा कर बाहर निकल आईं। उनका कहना था कि आंध्र प्रदेश के मुख्यमंत्री को बीस मिनट बोलने का समय दिया गया, अन्य मुख्यमंत्रियों को भी दस मिनट से अधिक बोलने दिया गया, मगर उन्हें पांच मिनट बाद ही बोलने से रोक दिया गया। उनका कहना है कि पश्चिम बंगाल के लिए वित्तीय आबंटन की मांग उठाने पर उनका माइक बंद कर दिया गया। इसे लेकर सत्तापक्ष उन पर हमलावर है। वित्तमंत्री ने सफाई दी है कि हर किसी के लिए समय निर्धारित था और उसी के हिसाब से उन्हें बोलने का मौका दिया गया; ममता बनर्जी का यह आरोप सरासर गलत है कि उनका माइक बंद कर दिया गया। जाहिर है, ममता बनर्जी इसे राज्य का अपमान बताते हुए अपने पक्ष में जनमत जुटाने का प्रयास करेंगी, पर खुद विपक्षी धड़ा इसे कितनी गंभीरता से लेगा, यह देखने की बात है।

ममता बनर्जी का केंद्र सरकार के साथ टकराव किसी से छिपा नहीं है और न यह पहला मौका था जब वे किसी बैठक या सभा के बीच से उठ कर बाहर निकल आईं। मगर कई लोगों का यह सवाल बना हुआ है कि आखिर नीति आयोग की बैठक में शामिल होने का फैसला उन्होंने किस मकसद से किया। क्या वे इस मौके का इस्तेमाल पश्चिम बंगाल के लिए वित्तीय आबंटन की मांग उठाने के लिए करना चाहती थीं, या सचमुच नीतियों के निर्माण में संघीय उत्तरदायित्व पूरा करने के नेक इरादे से गईं। अगर सचमुच उन्हें संघीय मर्यादा की परवाह थी, तो इस तरह वे बीच बैठक से नाराज होकर निकली क्यों? फिर यह ढिंढोरा क्यों कि वे विपक्ष की तरफ से अकेले बैठक में शामिल हुईं। अगर उन्हें विपक्ष की परवाह होती, तो वे उसकी बहिष्कार की अपील को इस तरह ठुकरातीं नहीं। उनके बैठक में जाने के बाद से ही कयास लगाए जाने लगे थे कि विपक्ष में टूट शुरू हो चुकी है। पहले ही उनके अनिश्चित रुख की वजह से विपक्ष की लड़ाई कमजोर हुई है और गठबंधन को कई बार असहज स्थितियों का सामना करना पड़ा है।

जब विपक्षी गठबंधन बना था तब ममता बनर्जी ने बड़े जोशो-खरोश के साथ उसमें भागीदारी की थी, फिर वे कांग्रेस की आलोचना करने लगीं। आम चुनाव से पहले जब सीटों की साझेदारी को लेकर बातचीत चलनी शुरू हुई, तो उन्होंने अकेले चुनाव लड़ने की घोषणा कर दी। उनके ऐसे अनिश्चित व्यवहार से विपक्षी गठबंधन खुद आश्वस्त नहीं रहता कि वे उसमें शामिल रहेंगी भी या किसी मोड़ पर साथ छोड़ जाएंगी। निश्चित रूप से उनके इस बदलते मिजाज का असर उनकी पार्टी के कार्यकर्ताओं के मनोबल पर भी पड़ता होगा। जब संसद में उनके सांसद बजट पर चर्चा करते हुए पश्चिम बंगाल की अनदेखी पर तीखा तेवर दिखा चुके थे, तो उन्हें नीति आयोग की बैठक में शामिल होने की सदाशयता दिखाने की जरूरत नहीं थी। कोई भी गठबंधन आपसी सहमति और विश्वास पर टिक पाता है। ममता बनर्जी के अस्थिर फैसलों से आखिरकार विपक्षी एकता पर असर पड़ता है।

लापरवाही का कचरा

दिल्ली में प्रदूषण की गहराती समस्या को लेकर आए दिन चिंता जताई जाती है, लेकिन इसे दूर करना प्राथमिकता में शामिल नहीं है। ठोस अपशिष्ट के निपटान को लेकर टालमटोल का रवैया यही दिखाता है कि संबंधित सरकारी महकमों की ओर से प्रदूषण से निपटने के लिए सख्त कदम उठाने के दावों की हकीकत क्या है। दिल्ली की आबोहवा को नुकसान पहुंचाने में ठोस अपशिष्ट की भूमिका से सभी वाकिफ हैं। इसका यहां के लोगों को बहुस्तरीय नुकसान उठाना पड़ रहा है। इसी रवैये पर शुक्रवार को सर्वोच्च न्यायालय ने काफी हैरानी जताई और ठोस अपशिष्ट प्रबंधन में घोर लापरवाही को लेकर दिल्ली नगर निगम को कड़ी फटकार लगाई। अदालत ने साफतौर पर कहा कि राष्ट्रीय राजधानी में ठोस अपशिष्ट प्रबंधन नियमों के क्रियान्वयन की स्थिति बेहद दयनीय है; यहां प्रतिदिन तीन हजार टन से अधिक ठोस अपशिष्ट अनुपचारित रह जाता है, जो कभी भी जन स्वास्थ्य के लिए आपात स्थिति का कारण बन सकता है।

सवाल है कि दिल्ली में ठोस अपशिष्ट के निपटान में लापरवाही को किस हद तक छूट दी जा सकती है। गौरतलब है कि दिल्ली में हर रोज करीब ग्यारह हजार टन से ज्यादा ठोस अपशिष्ट पैदा होता है, जिसमें लगभग तीन हजार टन कचरे का निपटान नहीं हो पाता। अंदाजा लगाया जा सकता है कि एक महीने में यह आंकड़ा क्या हो जाता होगा और उससे समस्या की गंभीरता किस स्तर पर पहुंच सकती है। एक सवाल यह भी है कि अगर इतनी बड़ी मात्रा में कचरे का निपटान नहीं हो पाता, तो उसका क्या होता है और आसपास के इलाकों में उसका क्या असर पड़ता होगा। छिपा नहीं है कि दिल्ली में भलस्वा, गाजीपुर और ओखला कचरा पट्टियों पर जितने बड़े पैमाने पर ठोस अपशिष्ट जमा होता गया है, उससे आसपास के इलाकों में भयावह समस्याएं पैदा हो गई हैं। इन जगहों पर अक्सर आग लगने और कई-कई घंटों तक कचरा जलते रहने की खबरें आती रहती हैं, जिससे वहां के लोगों का रहना दूभर हो जाता है। इसलिए अगर सुप्रीम कोर्ट ने इसकी वजह से जन स्वास्थ्य के लिए आपात स्थिति पैदा होने की आशंका जाहिर की है, तो इसकी गंभीरता को समझने की जरूरत है।

बढ़ती आबादी और घटते संसाधन

इसी वर्ष अप्रैल के अंत में जारी संयुक्त राष्ट्र की खाद्य संकट पर वैश्विक रपट के अनुसार आज दुनिया भर के 59 देशों के लगभग 28.2 करोड़ लोग भूखे रहने को मजबूर हैं।

चेतनादित्य आलोक

बेतहाशा बढ़ती आबादी आज दुनिया की सबसे बड़ी समस्याओं में से एक है। दुनिया के कई देशों में बढ़ती जनसंख्या के अनुपात में वहां उपलब्ध संसाधन अब कम पड़ने लगे हैं। जाहिर है कि अगर किसी भी देश की जनसंख्या लगातार तीव्र गति से बढ़ेगी, तो उसी अनुपात में वहां उपलब्ध प्राकृतिक संसाधनों पर दबाव भी बढ़ेगा। इसे भारत के संदर्भ में देखा जाए तो 7 जुलाई, 2024 को भारत की जनसंख्या एक अरब 44 करोड़ 19 लाख 10,332 थी। यह दुनिया की कुल जनसंख्या (8.119 अरब) का लगभग 18.02 फीसद है, जो विश्व के महज ढाई फीसद भू-भाग पर जीवन यापन करने को विवश है। इसी वर्ष अप्रैल के अंत में जारी संयुक्त राष्ट्र की खाद्य संकट पर वैश्विक रपट के अनुसार आज दुनिया भर के 59 देशों के लगभग 28.2 करोड़ लोग भूखे रहने को मजबूर हैं।

रपट के अनुसार युद्धग्रस्त गाजा पट्टी और सूडान में बिगड़े खाद्य सुरक्षा के कारण 2022 में 2.4 करोड़ से भी अधिक लोगों को भोजन के अभाव में भूखे रहना पड़ा था। देखा जाए तो संयुक्त राष्ट्र की रपट इस बात की ओर साफ संकेत करती है कि जैसे-जैसे विश्व की जनसंख्या बढ़ती गई, वैसे-वैसे भूखे लोगों की संख्या में भी लगातार वृद्धि होती गई। भोजन के अभाव पर संयुक्त राष्ट्र की पहली रपट 2016 में आई थी, जिसकी तुलना में ताजा रपट में विश्व भर में भूखे लोगों की संख्या में चार गुना वृद्धि हो चुकी है।

गौरतलब है कि बढ़ती जनसंख्या के अनुपात में सभी नागरिकों के लिए भोजन, वस्त्र, आवास, पेयजल, चिकित्सा व्यवस्था, दवाइयां आदि मूलभूत आवश्यकताओं की आपूर्ति करना किसी भी सरकार के लिए सरल काम नहीं है। बढ़ती आबादी के कारण ऊर्जा के विभिन्न स्रोतों- कोयला, तेल और प्राकृतिक गैसों आदि पर भी अत्यधिक दबाव बढ़ गया है, जिसे कम कर ऊर्जा के वैकल्पिक स्रोतों की तलाश और उपयोग करना जरूरी है। अर्थशास्त्री थामस राबर्ट माल्थस ने सन 1798 में गणितीय रूप से भोजन और मानव जनसंख्या के बीच संबंधों पर विचार करके बाद बताया था कि खाद्य आपूर्ति बढ़ने से जनसंख्या तीव्र गति से बढ़ती है और उपलब्ध संसाधनों को समाप्त कर देती है, जिसके परिणामस्वरूप मानव पीड़ा बनी रहती है, जब तक कि जनसंख्या को नियंत्रित नहीं किया जाता।

1888 में तत्कालीन वायसराय लार्ड डफरिन ने भी यह आशंका व्यक्त की थी कि भारत में कृषि उत्पादन कम है और तीव्र जनसंख्या वृद्धि के कारण यहां अकाल पैदा होता है। इसके बावजूद 1871 से 1941 तक भारत की औसत जनसंख्या वृद्धि दर 0.60 फीसद रही, जबकि दुनिया का औसत 0.69 फीसद था। हालांकि बीसवीं सदी के प्रथम दो दशकों में जनसंख्या वृद्धि दर अपेक्षाकृत कम रही। 1931 की जनगणना में सामने आया कि भारत में 1921-1931 के बीच प्रतिवर्ष एक फीसद की दर से जनसंख्या बढ़ी है, तो सभी चौंक गए, लेकिन 1951 के बाद यह दर लगभग दो फीसद के आसपास पहुंच गई। वैसे 1970 के दशक से देश की जनसंख्या वृद्धि दर में निरंतर गिरावट आई है, जो संभवतः पिछले कुछ

दशकों में शिक्षा और स्वास्थ्य के स्तर में किए गए सुधारों का परिणाम है, क्योंकि अब तक जनसंख्या वृद्धि की दर सर्वाधिक उन्हीं क्षेत्रों में पाई गई है, जहां लोग शिक्षित और स्वस्थ नहीं होते। हालांकि यह गिरावट अपेक्षाकृत काफी धीमी रही है। आर्थिक सर्वेक्षण के आंकड़ों पर गौर करें

> **संयुक्त राष्ट्र की रपट इस बात की ओर साफ संकेत करती है कि जैसे-जैसे विश्व की जनसंख्या बढ़ती गई, वैसे-वैसे भूखे लोगों की संख्या में भी लगातार वृद्धि होती गई। गौरतलब है कि बढ़ती जनसंख्या के अनुपात में सभी नागरिकों के लिए भोजन, वस्त्र, आवास, पेयजल, चिकित्सा व्यवस्था, दवाइयां आदि मूलभूत आवश्यकताओं की आपूर्ति करना किसी भी सरकार के लिए सरल काम नहीं है। बढ़ती आबादी के कारण ऊर्जा के विभिन्न स्रोतों- कोयला, तेल और प्राकृतिक गैसों आदि पर भी अत्यधिक दबाव बढ़ गया है, जिसे कम कर ऊर्जा के वैकल्पिक स्रोतों की तलाश और उपयोग करना जरूरी है।**

तो भारत में वर्ष 1971-81 के बीच 2.5 फीसद रही वार्षिक जनसंख्या वृद्धि की दर 2011-16 के मध्य तक आते-आते 1.3 फीसद रह गई।

इसका दूसरा पक्ष यह है कि जनसंख्या बढ़ने और संसाधनों के घटने से देशों पर कर्ज का बोझ भी बढ़ने लगता है। बिजनेस स्टैंडर्ड की एक रपट के अनुसार सितंबर 2023 तक भारत पर कुल कर्ज का बोझ 205 लाख करोड़ रुपए तक पहुंच गया था। वहीं, विश्व आर्थिक मंच की 2021 में जारी एक रपट के अनुसार शिक्षा गुणवत्ता में भारत का स्थान नब्बेवां है। जनसंख्या संबंधी संयुक्त राष्ट्र की 15 नवंबर, 2022 को जारी एक रपट के अनुसार 2027 में भारत चीन को पछाड़ देगा, जबकि संयुक्त राष्ट्र के आकलन को झुठलाते हुए अप्रैल 2023 में ही चीन को पछाड़ कर भारत दुनिया में सबसे अधिक जनसंख्या वाला देश बन गया। फरवरी 2024 में संयुक्त राष्ट्र ने ही अपनी एक अन्य रपट जारी की थी।

हालांकि 2011 के बाद से भारत में जनगणना नहीं हुई है। बहरहाल, अनियंत्रित जनसंख्या वृद्धि के कारण उत्पन्न बेरोजगारी, भुखमरी, कुपोषण, बीमारी, गरीबी, लाचारी आदि ऐसी समस्याएं हैं, जो किसी भी समाज के नैतिक, सैद्धांतिक, सांस्कृतिक, पारंपरिक और नैष्ठिक ताने-बाने को ध्वस्त कर सकती हैं। इसके कारण व्यक्तियों का सामाजिक विकास, सांस्कृतिक उत्थान, मानसिक और आध्यात्मिक उन्नयन बाधित हो सकता है।

अगर ऐसा हुआ तो समाज में चारों ओर हिंसा, बलात्कार, भ्रष्टाचार, लूटपाट, चोरी, झपटमारी, हत्या, आत्महत्या, उग्रवाद और आतंकवाद जैसे अपराधों में बेतहाशा वृद्धि होगी। लोग कानून और लोकलाज की परवाह किए बिना केवल अपने स्वार्थ की पूर्ति में लग जाएंगे। कमोबेश आज ऐसी ही परिस्थितियों से हमारा देश गुजर रहा है। वैसे, जनसंख्या को लेकर भारत के अनुभवों की बात करें तो आश्चर्य होता है कि इंदिरा गांधी को छोड़कर देश के किसी भी प्रधानमंत्री के कार्यकाल में सरकार की ओर से कोई कठोर कदम नहीं उठाए गए, जिससे अनियंत्रित जनसंख्या वृद्धि पर लगाम लगाई जा सके। शायद सरकारें जनता को नाराज करने से बचती रही होंगी, क्योंकि स्वतंत्रता से पूर्व भारतीय समाज में यह धारणा व्याप्त थी कि अधिक जनसंख्या विकास का पैमाना है।

दरअसल, उन दिनों जनसंख्या का कम होना नकारात्मक परिस्थितियों की देन माना जाता था, जो एक बुरी स्थिति थी, किंतु समय के साथ हमारी सोच में बदलाव आता गया और हमने इस पर विचार करना शुरू किया कि क्या भारत इतनी बड़ी जनसंख्या को संभालने में सक्षम है। समय-समय पर आने वाले भयानक सूखे और अकाल की त्रासदी ने भी इस चिंता को रेखांकित किया। मगर 1970 के दशक तक हमारी सरकारें खाद्यान्न उत्पादन बढ़ाकर जनसंख्या वृद्धि का समाधान ढूंढ़ती रहीं। परिवार नियोजन कार्यक्रम को सख्ती से अपनाया गया, तो लोग बेहद नाराज हुए। उसके बाद से बढ़ती जनसंख्या पर राजनेताओं ने चुप्पी साधना ही बेहतर समझा।

भूमंडलीकरण के बाद भी जनसंख्या का मुद्दा भारत में दबा रहा, लेकिन वर्तमान प्रधानमंत्री ने 2019 में स्वतंत्रता दिवस के अवसर पर लाल किले की प्राचीर से जनसंख्या वृद्धि पर चिंता जताई और राज्यों से इसे रोकने के लिए योजनाएं बनाने का आह्वान किया। 2024 का अंतरिम बजट पेश करते हुए वित्तमंत्री निर्मला सीतारमण ने तेजी से बढ़ती आबादी और जनसांख्यिकी में आए बदलाव की चुनौतियों से निपटने के लिए एक उच्च अधिकार प्राप्त समिति बनाने का एलान किया, जो 'विकसित भारत' बनाने के लक्ष्य को ध्यान में रखते हुए इन समस्याओं से निपटने के लिए सुझाव देगी।

डोलते ईमान का दौर

दुनिया मेरे आगे

सुरेश सेठ

कुछ बातें इस युग की नहीं, बीते युग की बातें लगती हैं। इनमें से एक प्रमुख सूत्र वाक्य है- रिश्वत लेना और देना अपराध है। पुराने जमाने में जब कहीं ऐसे रिश्वत के अखाड़े में जाते थे तो वहां हथकड़ियों में बंधे हुए हाथों के चित्र इस सूत्रवाक्य के साथ दिखाई दे जाते थे। ऐसे चित्र तो आज भी नजर आते हैं, लेकिन इनके हाथों में हथकड़ियां नहीं, बल्कि आशीर्वाद की मुद्रा है कि हे तात! अगर इस राह पर चलोगे, तो ही मंजिल पाओगे। मंजिल जो उनका प्रासाद है। छोटी गाड़ी के बदले बड़ी गाड़ी का चुनाव है और ऐसा लक्ष्य पाणिग्रहण है कि जिसके हाजमे में इस देश का कोई रमणीक स्थल नहीं आता, ऐसी शादियां करने के लिए विदेशी पर्यटन स्थल ललचाने लगे और यहां ये शादियां होती हैं, तो होती ही चली जाती हैं।

अब बहुत कुछ बदल गया है। खैर, देश की बात करें। देश की ईमानदारी, कर्त्तव्यनिष्ठा और नैतिक मूल्यों की बात करें। देखते ही देखते कहां खो गए ये सब? जब से इस देश ने होश संभाला है, आजादी के खुलेपन में सांस ली है, तब से यहां हर सरकारी कार्यालय में ऐसे-ऐसे सूचनापट्ट लगे रहते थे कि जिन्हें पढ़कर लगता था कि इस घोर कलियुग में यह सतयुग कहां आ गया? इस सतयुग के एक स्वस्थ और मुक्त सजग प्रहरी बनने की लालसा तब मन में जाग उठती थी। आज किसी के मन में जागती है तो उसे 'बौड़म' कहा जाता है। कभी एक ऐसा साफ-सुथरा माहौल बनाने का सपना था कि जिसमें नैतिक मूल्यों को समर्पित समाज लोगों के दृष्टि बिंब में सदा उभरता रहे और उन्हें 'रामराज लौट आया' कहने की जरूरत भी न पड़े। लोग आदर्श जीवन जीते हुए देश के नव-निर्माण में जुटे रहें। मगर धीरे-धीरे समय की धूल आदर्शों के इस धुले-पुंछे चेहरे पर पड़ती रही। नेता लोग भाषणों, दावों और नारों के साथ आईने साफ करते रहे, लेकिन धूल तो उनके अपने चेहरों पर पड़ी थी। यही कारण रहा कि वक्त बदला और रिश्वत की मनाही करने वाले ये सूचनापट्ट कहीं अपना प्रभाव दिखाते नजर भी नहीं आते।

> **नए शोध ग्रंथों को टटोलते हैं तो पाते हैं कि सच्चाई बदल गई। उसके बदसूरत आंकड़े सबको स्वीकार हो गए। एक बड़ा आंकड़ा यह कि एशिया के सत्रह देशों में रिश्वतखोरी में भारत अव्वल नंबर पर है। जिंदगी तेजी से बदल रही है। कितनी नई बातें हमारी जिंदगी का सामान्य हिस्सा बन गई हैं।**

नए शोध ग्रंथों को टटोलते हैं तो पाते हैं कि सच्चाई बदल गई। उसके बदसूरत आंकड़े सबको स्वीकार हो गए। एक बड़ा आंकड़ा यह कि एशिया के सत्रह देशों में रिश्वतखोरी में भारत अव्वल नंबर पर है। जिंदगी तेजी से बदल रही है। कितनी नई बातें हमारी जिंदगी का सामान्य हिस्सा बन गई हैं। उसमें एक बात यह भी है कि इस देश के अधिकांश नागरिक उन सब आजाद बरसों में एक नया सत्य पा गए कि यहां कोई भी काम सीधे और सच्चे रास्ते से नहीं हो सकता। ऐसे रास्तों की तलाश उन फुटपाथी लोगों के लिए बच गई है, जो हर मंजिल को पाने के लिए 'शार्टकट' या संक्षिप्त रास्ते की तलाश करते हैं और सफल होते हैं।

कभी कहा जाता था 'प्यादे से फर्जी भयो टेढ़ो-टेढ़ो जाए।' अब बात बदल गई। कहते हैं कि प्यादे से सुल्तान भयो, हर टेढ़े और गलत को सीधा और सही बता कर। चले थे रामयुग की स्थापना के प्रयास में देश की आजादी के बाद। रामयुग तो कहीं आदर्शवाद के चुकते धुंधलके में खो गया। पल्ले आया ऐसा राज, जिसमें भ्रष्ट नेताओं, अफसरों और माफिया की तिकड़ी, जो धड़ल्ले से मनमानी करती है और इसे नव समाज का नाम देती है। तरक्की का मार्ग प्रशस्त होता जा रहा है। अब तो रातोंरात बिसात उलट देने की तरह पांसा बदल देने वाले रंग बदल देते हैं और फिर खुलेआम कामचलाऊ घोड़ों की बोली अरबी घोड़ों के दाम पर लग जाती है। पांच साल राज करने का सपना देख कर आए भद्रपुरुष तड़ीपार हो जाते हैं और मध्यावधि चुनावों का बैंड बाजा बजाने वाले फिर नए ढोल पीटने में व्यस्त होते हैं।

किसी ने कहा कि अरे यहां तो राष्ट्रीय एकता का सप्ताह मनाने के लिए वंदनवार अभी सूखे भी नहीं। अभी तो 'एक देश एक कर, एक देश एक बाजार', 'एक देश एक ड्राइविंग लाइसेंस' का नारा लगाने वालों ने 'एक देश एक चुनाव' का नारा उठाया ही है कि यह अपने नाती-पोतों तक अपनी गद्दी की विरासत सुरक्षित रख देने का सपना देखने के नीचे से उनकी बैसाखियां किसने खींच दी? अभी तक नहीं जानते कि आजकल नए दावों, नई घोषणाओं और नए वचनों का कोई मोल नहीं रह गया। जमाना इतनी तेजी से बदल रहा है कि कल की घोषणा आज एक ऊल-जलूल प्रहसन बन कर रह जाती है।

और जिन्हें कल जिंदगी में घटते हुए विरोधाभास और अप्रासंगिक कह देते थे, वही आज निष्ठुर सत्य बन गए हैं। पेशेवर संपर्क लोग आजकल मध्यजन नहीं कहलाते, उनमें सम्मानजनक जनसंपर्क अधिकारियों की उपाधियां बांट दी जाती हैं। कल जिन्हें अपने लिए दलाल शब्द सुनना एक गाली जैसा लगता था, आज वही जनसंपर्क अधिकारी बन इतराते नहीं थकते। जनाब आजकल तो चंद नव-उन्मेषी विश्वविद्यालयों में इनकी डिग्रियां भी बंटने लगी हैं। लोग इसके डाक्टर भी हो गए हैं, बाकायदा शोध करके। खोजी संस्थान ने बताया कि रिश्वत के भी नए-नए रूप उभरने लगे हैं। जरूरी नहीं है कि वे नोटों की गुलाबी झलक ही दिखाएं। उसका कोई ऐसा रूप भी दिख सकता है जिस पर लोग आसानी से विश्वास न करें।

भविष्य की फिक्र

देश के विश्वविद्यालयों का नियमन करने वाली राष्ट्रीय संस्था विश्वविद्यालय अनुदान आयोग ने कालेजों को निर्देश दिए हैं कि कालेज की कैंटीन में पिज्जा, बर्गर जैसे जंक फूड की बिक्री पर रोक लगाई जाए। जैसे खिलाड़ियों, पहलवानों के लिए पौष्टिक आहार जरूरी है, वैसे ही पढ़ने वाले छात्रों के लिए भी यह जरूरी है, जिन्हें कई-कई घंटे लैपटाप और स्मार्टफोन के सामने बैठकर काम करना पड़ता है। उनके लिए पौष्टिक भोजन करना जरूरी है। अपना शहर छोड़ कर पढ़ने के लिए अन्य शहरों की ओर जाने वाले लगभग सभी विद्यार्थी फास्ट फूड, पिज्जा, बर्गर, नूडल खाकर अपना दिन निकाल देते हैं। इसका दुष्प्रभाव उनके शरीर, आंखों और दिमाग पर भी पड़ता है। ऐसी स्थिति में अनुदान आयोग का यह निर्देश तत्काल अमल में लाए जाने योग्य है। कालेज के अलावा स्कूलों, छात्रावासों और जहां पर छात्रों के खाने-पीने की व्यवस्था है, वहां सभी प्रकार के फास्ट फूड, साफ्टड्रिंक, एनर्जी ड्रिंक्स पर भी पाबंदी लगाने की जरूरत है। उनके स्थान पर भारतीय नाश्ता और भोजन परोसा जाना चाहिए। खुद विद्यार्थियों और अभिभावकों को भी इसके लिए आग्रह और प्रयास करने चाहिए, क्योंकि उनके भविष्य का ही सवाल है।

– विभूति बुपक्या, खाचरोद, मप्र

हादसे की कड़ियां

'हादसों का सिलसिला' (संपादकीय, 19 जुलाई) पढ़ा। भारतीय रेलों की बढ़ती दुर्घटना चिंता का विषय बन चुकी है। सच यह है कि पटरियों का रखरखाव ठीक से नहीं हो रहा है, इतनी रेल दुर्घटनाओं के बाद भी कवच प्रणाली सभी ट्रेनों में नहीं लगी है, जबकि बालासोर दुर्घटना के समय भी इसे लगाने पर जोर दिया गया था। सिग्नल प्रणाली भी मजबूत नहीं है। ट्रेन के पुराने डिब्बों से काम चलाया जा रहा है। अभी भी एलएचबी प्रणाली सभी ट्रेनों में उपलब्ध नहीं है। तकनीकी प्रशिक्षण सभी चालकों और गार्ड के लिए जरूरी है। उनकी आंखों की जांच भी हमेशा होती रहनी जरूरी है। रेलवे में सभी खाली पड़े पदों पर पर्याप्त कार्मिकों की भर्ती भी होनी चहिए। तभी डिब्रूगढ़-चंडीगढ़ जैसी दुर्घटनाएं रुक पाएंगी।

– भगवानदास छारिया, इंदौर

दरकते पहाड़

इस समय पहाड़ों के धंसने से बड़ी विनाश लीला के मंजर सामने आ रहे हैं। पहाड़ों की ढलान पर पैदा होने वाली वनस्पति पहले से ही कमजोर मिट्टी में पनपती है। ऐसे में तेज बारिश, हिमपात आदि के कारण आसानी से धंसने लगती है। यातायात का दबाव भी पहाड़ों को कमजोर करता है। इस समय बड़ी संख्या में लोग यात्रा, पर्यटन, स्वास्थ्य लाभ के लिए घरों से निकलते हैं। यह सिलसिला अगले दो माह तक और जारी रहेगा। अभी उमड़ी भीड़ से अंदाजा लगाया जा सकता है कि आने वाले दो माह में इन क्षेत्रों में क्या हालत होगी! भीड़ बढ़ने से पहाड़ी क्षेत्रों में एकल इस्तेमाल प्लास्टिक आदि के कारण प्रदूषण बढ़ रहा है, जिससे आबोहवा में तापमान में बढ़ोतरी हो रही है ऐसे में भूस्खलन जैसे दुष्परिणाम सामने आते हैं तो उसकी एक वजह ये मानवीय गलतियां भी हैं। यात्रा के दौरान अगर लोग घरों से स्टील आदि के जरूरी बर्तन साथ ले जाएं तो पर्यावरण पर बड़ी कृपा होगी।

– अमृतलाल मारू 'रवि', इंदौर, मप्र

आत्मविश्वास की राह

हम जिंदगी में बहुत कुछ करना चाहते हैं, लेकिन हर कुछ संभव नहीं हो पाता है। परिस्थिति, परिवार का साथ, समय और किस्मत कभी साथ देती है तो कभी छोड़ देती है। मगर हमें अपने सपने को पूरा करने के लिए खुद पर विश्वास, जुनून और निरंतर प्रयास के साथ आगे बढ़ते रहना चाहिए। चुनौतियां हर किसी के जिंदगी में आती हैं, मगर यही चुनौतियां हमें सिखाती हैं कि हम अपनी जिंदगी को एक साधारण सफर बनाएं। हमें लड़ना, मजबूत बनना, अनुभव सीखना, परिवर्तन लाना, जिंदगी का काम है, पर खुद पर विश्वास रखना और जिंदगी के साथ-साथ चलना और सीखना कि हमें अपने लक्ष्य को प्राप्त करना है, यह भी अहम है। आत्मविश्वास की राह पर हौसले डगमगा सकते हैं, पर हमें हमेशा डटकर हर परिस्थिति को समझना, स्वीकार करना और उनसे लड़ना पड़ता है।

– कल्पना कुमारी, रायपुर, छत्तीसगढ़

हमें लिखें, हमारा पता : edit.jansatta@expressindia.com | chaupal.jansatta@expressindia.com

www.readwhere.com

नवभारत टाइम्स

नवभारत टाइम्स । नई दिल्ली। सोमवार, 29 जुलाई 2024

मनु का कमाल

जब पूरा देश यह आस लगाए बैठा है कि पेरिस ओलिंपिक में हमारे ऐथलीट तोक्यो में जीते अब तक के सबसे ज्यादा 7 पदकों का रेकॉर्ड तोड़कर नई और लंबी लकीर खींचेंगे, तब मनु भाकर की जीत की खबर ने स्वाभाविक ही सबका जोश कई गुना बढ़ा दिया है। उनका यह ब्रॉन्ज मेडल सिर्फ इसलिए महत्वपूर्ण नहीं है कि यह पेरिस ओलिंपिक में किसी भारतीय ऐथलीट का पहला मेडल है। इस उपलब्धि की ऐतिहासिक चमक के पीछे कई और बातें हैं।

बनाए कई रेकॉर्ड | पहली बात तो यह कि मनु ने ब्रॉन्ज मेडल पर कामयाब निशाना लगाकर एक साथ कई कीर्तमान स्थापित कर दिए हैं। वह ओलिंपिक मेडल जीतने वाली देश की पहली महिला शूटर हो गई हैं। इससे पहले इस ऑल बॉयज क्लब में राज्यवर्धन सिंह राठौर, अभिनव बिंद्रा, गगन नारंग और विजय कुमार ही थे। यही नहीं, मनु पिछले 20 साल में किसी इंडिविजुअल इवेंट में ओलिंपिक के फाइनल में पहुंचने वाली पहली महिला भी बनीं। 10 मीटर एयर पिस्टल मुकाबले में तो आज तक कोई महिला शूटर ओलिंपिक फाइनल में भी नहीं पहुंची थी।

साझा प्रयास का फल

अहम रही यात्रा | मनु जिस मंजिल पर पहुंची हैं, उसे उनकी उतार-चढ़ाव भरी यात्रा भी खास बनाती है। मात्र 19 साल की उम्र में तोक्यो ओलिंपिक तक पहुंचकर वहां अचानक पिस्टल खराब होने की वजह से चूक जाना किसी भी टीनेजर के लिए कितना बड़ा झटका होगा, यह आसानी से समझा जा सकता है। मनु न केवल उस झटके से उबरीं बल्कि अगले ही ओलिंपिक में जीत दर्ज कराकर अपनी फाइटिंग स्पिरिट का सिक्का जमा लिया।

ऐथलीटों की कौम | मनु महज एक ऐथलीट नहीं हैं। वह युवा ऐथलीटों की उस पूरी कौम की नुमाइंदगी करती हैं जो देश का गौरव बढ़ाने के अभियान में लगे हैं। चाहे नीरज चोपड़ा हों या पीवी सिंधु या विनेश फोगाट और मीराबाई चानू- ये उन दर्जनों नामों में शुमार हैं जो अपना खून-पसीना जलाते हुए देश का मान बढ़ाने में लगे हैं। इनमें से कुछ नाम देश को सुनहरी आभा प्रदान करें तो आश्चर्य नहीं।

साझा प्रयास | इसी बिंदु पर उन प्रयासों को दर्ज करना भी महत्वपूर्ण हो जाता है जिनकी बदौलत ये खिलाड़ी बेहतरीन प्रदर्शन कर पा रहे हैं। चाहे सरकार की ओर से मुहैया कराई जाने वाली सुविधाएं हों या भारतीय कॉरपोरेट जगत की ओर से स्पॉन्सर की जाने वाली सहूलियतें- इनका ऊंचा होता ग्राफ ही वह माहौल बनाता है जिसमें खिलाड़ी ऊंचे मनोबल के साथ पदक तक पहुंचने वाली छलांग लगा पाता है। गौर करने की बात है कि पिछले आयोजनों के मुकाबले पेरिस ओलिंपिक में इंडिया इंक ने अपना निवेश 30-40 फीसदी बढ़ाया है। मनु की ताजा उपलब्धि की खासियत यही है कि इसमें पूरे देश की भावना, उत्साह और प्रोत्साहन की झलक दिख रही है।

चक्र-व्यू

होते मीर तो...

राहुल पाण्डेय

किसी ने मुझसे गुजारिश की है कि इस सोमवार आप सिर्फ और सिर्फ मीर पर बात करिएगा। मैंने भी वादा कर लिया कि इस बार मैं सिर्फ और सिर्फ मीर पर ही बात करूंगा। इन दिनों मैं हर कवि से पूछ रहा हूं कि कविता का हाल बताइए। कैसी लगती है आजकल की कविता? कवि दूसरों की कविताओं के बारे में जो कह रहे हैं, अगर मैं उसका एक हर्फ भी यहां लिख दूं तो यकीनन हिंदुस्तान के कवि क्रांति कर बैठेंगे। और यह तो सभी जानते हैं कि हिंदुस्तान का मौसम इन दिनों किसी भी तरह की क्रांति के लिए मुफीद नहीं है। इसलिए मैं एक भी हर्फ नहीं लिखूंगा। पिछले दिनों मीर मिले तो उनसे भी पूछा कि कविता कैसी है? बताने की बजाय नाराज होने लगे। कहने लगे, मैं किसी कविता को नहीं जानता। मैंने कभी किसी कविता को कुछ नहीं कहा। मैंने समझाया कि इन दिनों रेख्ता के अलावा किसी और भाषा में जो कुछ कहा जाता है, उसे कविता कहते हैं। मीर मुतमईन नहीं हुए। कहने लगे, रेख्ता के अलावा और किसी भाषा में कैसे कुछ भी कहा जा सकता है? मैंने बताया, आपके बाद हिंदुस्तान वालों ने हिंदी ईजाद कर ली है। पूछने लगे, और पाकिस्तान वालों ने? मैंने बताया, उन्होंने गरीबी ईजाद की है। जिस तरह इन दिनों हिंदुस्तान में किसी भी चीज से ज्यादा कविता दिखाई देती है, वैसे ही पाकिस्तान में हर चीज से ज्यादा गुरबत दिखाई देती है।

वैसे कविताएं अब दो कौड़ी की हो गई हैं। यह मैं नहीं कह रहा हूं। पिछले दिनों एक बुजुर्ग साहित्यकार ने ऐसा कहा है और शायद वह अपने जीवन में कभी भी मीर नहीं बनना चाहते थे। वैसे भी मीर बनने में जाने उम्रें खाक होती हैं। उनके भी कुछ दिन पहले एक वरिष्ठ कवयित्री ने कहा था कि कविताएं अब प्लास्टिक की हो गई हैं। कवयित्री स्वयं भी कविताएं लिखती हैं। एक बड़े विश्वविद्यालय के हिंदी के प्रफेसर पिछले दिनों बता रहे थे कि अब तो हाल यह है कि PhD का प्रेशर ना हो तो आंच चाहे जितनी तेज कर लो, कविताएं सीटी ही नहीं मारतीं। हिंदुस्तान में कविताओं को PhD के छात्रों ने ही संभाल रखा है। मीर ने मुझसे पूछा, क्या अब कविताएं देग में डालकर पकाई जाती हैं? मैंने कहा, हां, बस उस देग का नाम PhD होता है। और आग कहां से आती है? मीर ने पूछा। मैंने बताया, उसके लिए PhD करने वाले उदयीमान कवि प्रफेसर साहब की गैस भराकर ले आते हैं। कहने लगे, भला हुआ कि मैं इन दिनों नहीं हूं। मैंने पूछा, होते तो क्या करते? बोले, करता क्या, मुझे भी कविता करनी पड़ती। और आपके शेर? शेर मत कहो किबला। मीर नाराज होते हुए बोले, देख नहीं रहे कि पाकिस्तान ने शेरों के चक्कर में अपना क्या हाल कर लिया?

एकदा

बर्नार्ड शॉ की डिश

प्रसिद्ध आयरिश नाटककार, समीक्षक और समाज सुधारक जॉर्ज बर्नार्ड शॉ शुद्ध शाकाहारी थे। उनका मानना था कि 'किसी भी जीव को बिना कारण कष्ट नहीं देना चाहिए।' वह अपने व्यंग्य और हास्य के लिए भी जाने जाते थे। एक बार वह आयरलैंड के एक प्रसिद्ध रेस्तरां में गए। उन्होंने मेन्यू कार्ड को अच्छे से देखा और कहा, 'मैं शाकाहारी हूं इसलिए मैं केवल सलाद लूंगा, लेकिन ध्यान रहे कि सलाद एकदम ताजा और हरा हो।' वेटर ने उनका ऑर्डर लिखा और पूछा, 'आपको इसके साथ कुछ और भी चाहिए, सर?' तभी शॉ को मस्ती सूझी और उन्होंने मजाकिया अंदाज में वेटर से कहा, 'हां, मुझे कच्ची गोभी का एक बड़ा-सा पत्ता लाकर दीजिए ताकि मैं खाते समय खुद को एक खरगोश की तरह सोच सकूं।' वेटर मुस्कुराया और उनका ऑर्डर लेकर चला गया। कुछ समय बाद उसने उन्हें एक बड़ी प्लेट में ताजे सलाद के साथ गोभी का पत्ता भी लाकर दिया। वेटर ने प्लेट रखते हुए शॉ से कहा, 'सर, यह लीजिये हरे-भरे सलाद के साथ आपकी 'खरगोश की थाली'। आज आपकी वजह से हमारे मेन्यू में कुछ खास शामिल हो गया।' वेटर की बात सुनकर शॉ जोर से हंसे और बोले कि 'धन्यवाद, अब मुझे पूरा यकीन हो गया है कि मैं एकदम सही जगह पर भोजन कर रहा हूं।' शॉ का जीवन और उनकी बातें हमेशा लोगों को सोचने और हंसने पर मजबूर करती रही हैं। साहित्य के क्षेत्र में योगदान के लिए 1925 में उन्हें नोबेल पुरस्कार से सम्मानित किया गया।

AI Image

संकलन : **रिंकल शर्मा**

शेख हसीना सरकार ने कोटा सिस्टम के ख़िलाफ़ स्टूडेंट्स के गुस्से को कम करके आंका

बांग्लादेश को कहां ले जाएगा छात्र आंदोलन

रहीस सिंह

'तुई के? अमी के? रजाकार, रजाकार! के बोलेचे, के बोलेचे, सैराचार-सैराचार।' यानी तुम कौन हो? मैं कौन हूं? रजाकार, रजाकार! कौन कहता, कौन कहता, तानाशाह, तानाशाह!' पिछले दिनों बांग्लादेश ने आंदोलनकारियों और सरकार के टकराव का जो एपिसोड लिखा उसमें ये आवाजें उठीं जो बहुत दूर तक गईं और बांग्लादेश भी गृहयुद्ध जैसी स्थिति में पहुंच गया।

करियर की राह में बाधा | कहने के लिए तो यह 1971 के मुक्ति युद्ध के मुक्ति योद्धाओं के लिए निर्धारित कोटा के खिलाफ एक स्टूडेंट प्रोटेस्ट था लेकिन सही मायने में सरकार अपने अस्तित्व की लड़ाई लड़ती हुई दिखी। यह कोटा शेख मुजीबुर रहमान द्वारा 1972 में मुक्ति योद्धाओं के बच्चों के लिए निर्धारित किया गया था जिसकी सीमा 30 प्रतिशत थी। बाद में इसमें उनके पोते-पोतियों को भी शामिल कर लिया गया। बढ़ती बेरोजगारी के बीच युवाओं ने इसे अपने करियर में एक बड़ी बाधा माना और विरोध शुरू कर दिया।

खेल खेलती दिखी सरकार | सरकार ने शुरू में इसे हल्के में लिया और समाधान खोजने के बजाय उनके साथ खेल खेलने लगी। 2018 में हाइकोर्ट में इस कोटा सिस्टम की वैधानिकता को चुनौती देने वाली एक याचिका दाखिल की गई। कोर्ट ने 8 मार्च 2018 को सुनवाई करने के बाद इसे रिजेक्ट कर दिया। स्टूडेंट्स को यह नागवार गुजरा क्योंकि वे इस कोटा सिस्टम में सुधार चाहते थे। नतीजतन, प्रोटेस्ट शुरू हो गया। तब सरकार ने एक एक्जीक्यूटिव ऑर्डर जारी कर इस कोटा सिस्टम को रद्द कर दिया। 2020 में सरकार के एक्जीक्यूटिव ऑर्डर को लागू भी कर दिया गया।

खोल दिया चोर दरवाजा | इसके बाद सरकार ने एक चोर दरवाजा खोला। वह था हाइ कमीशन, जिसने पुनः हाईकोर्ट में इस आशय की अपील फाइल की कि शेख हसीना सरकार का एग्जीक्यूटिव ऑर्डर ही अवैधानिक है। परिणाम यह हुआ कि 5 जून 2024 को हाईकोर्ट ने सरकार के एक्जीक्यूटिव ऑर्डर को रद्द कर दिया और कोटा सिस्टम फिर से बहाल हो गया। स्टूडेंट्स ने सरकार से इस फैसले के खिलाफ एक्जीक्यूटिव ऑर्डर अथवा बिल लाने की अपील की। लेकिन सरकार ने सुप्रीम कोर्ट में अपील डाल दी। स्टूडेंट समझ गए कि सरकार की मंशा सही नहीं है। फिर क्या था, वही हुआ जो नहीं होना चाहिए था। ढाका की सड़कें खून से सनी नजर आईं।

दमन का प्रयास | छात्र रिफॉर्म्ड कोटा सिस्टम चाहते हैं जिसमें 5 प्रतिशत महिलाओं और 1 प्रतिशत विकलांगों के लिए कोटा हो शेष नौकरियां मेरिट से मिलें। उनका मानना है कि बांग्लादेश में कुल आबादी के केवल 0.13 प्रतिशत को ही फ्रीडम फाइटर्स डिसेंडेंट का दर्जा हासिल है, फिर उनके लिए 30 प्रतिशत का कोटा क्यों। इसे भले अवैज्ञानिक कहा जा रहा हो, लेकिन यह कोटा सिस्टम अवामी लीग सरकार के लिए फायदेमंद था। यही वजह है कि शेख हसीना ने स्टूडेंट प्रोटेस्टर्स को रजाकार अथवा उनका समर्थक कहा ताकि इन्हें कुचला जा सके।

क्यों उग्र हुआ आंदोलन

- बेरोजगारी से जूझ रहे हैं युवा
- सरकार ने नहीं समझीं भावनाएं
- आंदोलन पर चलाया दमन चक्र

उपलब्धियां कम नहीं | वैसे यह एक तथ्य है कि शेख हसीना के शासनकाल में बांग्लादेश ने कई क्षेत्रों में असाधारण उपलब्धियां हासिल कीं। वर्तमान में बांग्लादेश रेडी-टू-वेयर कपड़ों के निर्यात का एक पावर हाउस है। यह क्षेत्र वैश्विक बाजार में लगभग 40 अरब डॉलर का निर्यात करता है और 40 लाख से अधिक लोगों को रोजगार देता है। पिछले 15 वर्षों में राजधानी ढाका में सड़कों, पुलों, कारखानों और मेट्रो रेल का जाल बिछ गया है। पिछले एक दशक में बांग्लादेश की प्रतिव्यक्ति आय तीन गुना हो गई है और विश्व बैंक के मुताबिक पिछले 20 वर्षों में वहां 2.5 करोड़ लोगों को गरीबी से बाहर निकाला गया है।

एंटीनैशनल का तमगा | फिर भी मध्यम वर्ग सरकार के साथ नहीं दिखा, क्यों? इसका पहला कारण तो बेरोजगारी ही है जो 16 प्रतिशत से भी ऊपर है। यानी वहां हर 5वां व्यक्ति बेरोजगार है। यही वजह है कि युवा बेरोजगार कोटा सिस्टम के खिलाफ इस तरह आक्रामक हुआ। ऊपर से प्रधानमंत्री शेख हसीना ने स्टूडेंट प्रोटेस्ट के खिलाफ तानाशाही तरीका रवैया अपनाया। उन्होंने प्रेस कॉन्फ्रेंस में कह दिया कि रिजर्वेशन फ्रीडम फाइटर्स के पोते-पोतियों को नहीं तो क्या 'रजाकार' के पोते-पोतियों को दें? इस तरह उन्होंने स्टूडेंट प्रोटेस्टर्स को एंटी नेशनल का तमगा दे दिया। दरअसल 'रजाकार' वे थे जिन्होंने 1971 के मुक्ति युद्ध में पाकिस्तानी आर्मी की मदद की थी।

जनादेश पर सवाल | इस संदर्भ में एक सवाल शेख हसीना को इसी साल मिले जनादेश का भी बनता है। अगर जनवरी में हुए चुनावों के वक्त देश के मतदाता शेख हसीना और उनकी पार्टी के साथ थे तो फिर अचानक उनके विरोध में इतना तगड़ा आंदोलन कैसे हो गया? ट्रांसपरेंसी इंटरनैशनल के मुताबिक बांग्लादेश में 2024 के आम चुनाव न तो स्वतंत्र थे, न निष्पक्ष। निष्पक्ष कैसे होते जब 1500 से अधिक विपक्षी नेताओं को पहले ही अदालतों में दोषी बताते हुए प्रतिपक्ष को पंगु बना दिया गया था। इससे प्रोटेस्टर्स को लगता है कि बांग्लादेश की न्यायपालिका एकपक्षीय है। इसलिए वे कोटा सिस्टम पर जुडिशरी के फैसले के बाद भी प्रोटेस्ट कर रहे हैं।

(लेखक वैदेशिक मामलों के जानकार हैं)

खुशियों का मेडल चाहिए तो देखें ओलिंपिक्स

AI Image

जीवन आनंद

14 साल की उस जिमनास्ट ने मॉन्ट्रियल में आयोजित 1976 समर ओलिंपिक्स में जो कमाल किया था, उसका जवाब तब की मशीन के पास भी नहीं था। किसी ने नहीं सोचा था कि कोई जिमनास्टिक्स में परफेक्ट 10 भी स्कोर कर सकता है। रोमानिया की नादिया कोमानेची ने वह भ्रम तोड़ दिया। हालांकि स्कोरबोर्ड इस तरह प्रोग्राम्ड नहीं था कि वह इस स्कोर को दिखा सके। आखिरकार स्कोर डिस्प्ले करना पड़ा 1.00। नादिया ने इंसानी क्षमता के एक नए स्तर को दुनिया के सामने जाहिर किया था। कुछ ऐसा ही कारनामा था उसैन बोल्ट का। किसी के पैर 43.99 किलोमीटर प्रतिघंटे की रफ्तार भी पकड़ सकते हैं, यह दिखाया बोल्ट ने। हमारे महानगरों की सड़कों तक पर ट्रैफिक कभी-कभार ही इस स्पीड से दौड़ पाता है।

हर चार बरस पर होने वाला ओलिंपिक्स केवल खेलों का महायोजन भर नहीं, यह इंसानी हिम्मत, ताकत और क्षमताओं का कड़ा इम्तिहान भी है। और इस इम्तिहान में ऐथलीट्स को एक-एक कर चुनौतियों को ढेर करते और सफल होते देखने से अधिक आनंददायक कुछ भी नहीं। करोड़ों बरसों के इवॉल्यूशन से गुजरते हुए इंसान यहां तक पहुंचा है। उसके हर एक पल को निचोड़ कर रख देता है ओलिंपिक्स का मंच। दुनियाभर से आए ऐथलीट्स के बीच रहते हुए उनसे टक्कर लेना और खुद को सर्वश्रेष्ठ साबित करना आसान नहीं। महान मुक्केबाज मोहम्मद अली का कहना था कि अगर आपमें जोखिम लेने का साहस नहीं है तो कुछ हासिल नहीं कर पाएंगे। ओलिंपिक्स वह जगह है, जहां इस तरह के जोखिम बार-बार लिए जाते हैं। बार-बार वह सीमा आगे खिसकती जाती है, जहां तक इंसान पहुंच सकता है। इन कीर्तिमानों को बनते-बिखरते देखने में जो आनंद है, वह कहीं और नहीं आ सकता।

कोई भी दूसरा खेल इतना वैश्विक नहीं जितना ओलिंपिक्स। न ही कोई इतना समावेशी है और न ही चुनौतीपूर्ण होते हुए भी इतना उदार। हर खेल अपने खिलाड़ियों से केवल जीत मांगता है, लेकिन ओलिंपिक्स कहता है कि शामिल होना ही बहुत बड़ी बात है। तभी तो अमेरिकी फिगर स्केटर मिशेल क्वान ने 1998 में रजत पदक जीतने के बाद कहा कि मैंने गोल्ड नहीं गंवाया है बल्कि सिल्वर मेडल जीता है। वहीं, ऑस्ट्रेलिया की गोल्ड मेडलिस्ट तैराक ब्रोंटे बैरेट ने इस भावना को कुछ ऐसे जाहिर किया कि, 'ओलिंपिक्स खेलों का मतलब केवल जीत नहीं है, इसका मतलब है जीतने के लिए प्रयास करना। इसका आदर्श वाक्य है तेज, ऊंचा और मजबूत, न कि सबसे तेज, सबसे ऊंचा और सबसे मजबूत। कभी-कभी प्रयास करना ही मायने रखता है।' कोशिश की आदत को ओलिंपिक्स छूटने नहीं देता, कोई चाहे तो भी नहीं और इन खेलों को देखते हुए इसे आप भी महसूस कर सकते हैं।

ओलिंपिक्स असंभव को संभव कर दिखाने वाली जगह है, जहां कोई किम युन-मी बन जाता है, कोई माइकल फेल्प्स, तो कोई इयान मिलर। ये खेल मौका देते हैं इतिहास में नाम दर्ज कराने का और उस लक्ष्य के लिए ऐथलीट्स जी-जान लगा देते हैं। उनके लिए खुद को परखने का सबसे बड़ा मौका होता है ओलिंपिक्स। मौका बतौर दर्शक हमारे भी पास है कि हम श्रेष्ठ बनने की उस चाहत से जुड़ सकें। गोल्ड मेडलिस्ट स्विमर डॉन फ्रेजर के लिए खेलों की दुनिया में उत्कृष्टता की सबसे सम्मोहक खोज है ओलिंपिक्स। यही खोज हमारे जीवन में भी चल रही है, एक बड़े काम का हिस्सा बनने की, संपूर्णता की, संतुष्टि की, गर्व और आनंद की। अगर आप इसे पूरा करना चाहते हैं तो जुड़ जाइए खेलों के महाकुंभ से।

शेयर करें अपने अनुभव

जीवन की दिनचर्या के अनुभवों में आप कैसे आनंद महसूस करते हैं, हमें बताएं nbtreader@timesgroup.com पर, और सब्जेक्ट में लिखें- **'जीवन आनंद'**

एवरेस्ट की चढ़ाई कैसे हुई आसान

मृत्युंजय राय

सर एडमंड हिलेरी और शेरपा तेनजिंग नोर्गे 29 मई 1953 के रोज जब माउंट एवरेस्ट पर चढ़े तो इस खबर से दुनिया हैरान रह गई। इसके कुछ दशक बाद एडमंड हिलेरी ने बेटे पीटर हिलेरी के साथ 1990 में एवरेस्ट को फिर फतह किया। पीटर ने एक इंटरव्यू में बताया था कि एवरेस्ट पर पहुंचने के बाद उनके पिता ग्लोबल सिलेब्रिटी बन चुके थे। लोगों में उनका ऑटोग्राफ लेने की होड़ मची रहती थी।

आज भी एवरेस्ट तक पहुंचना कोई आसान काम नहीं, लेकिन पहले जो अचंभा होता था, वह अब नहीं होता। या यह कहें कि यह अचंभा होना बरसों पहले ही बंद हो गया था। क्यों उसे इन आंकड़ों से समझिए। पिछले साल कोई 1,200 लोगों ने एवरेस्ट पर चढ़ने की कोशिश की और उनमें से 655 कामयाब रहे।

एवरेस्ट की इसी बदली हुई दुनिया के बारे में विल कॉकरेल (Will Cockrell) ने **Everest, Inc** नाम की किताब में बताया है। वह लिखते हैं कि एवरेस्ट ने एक प्रफेशनल गाइडिंग इंडस्ट्री को जन्म दिया है। कई कंपनियां लोगों को एवरेस्ट तक ले जा रही हैं। वे इसके लिए 35,000 से 1,10,000 डॉलर तक की फी ले रही हैं। इनके लिए तजुर्बेकार पर्वतारोही काम करते हैं।

विल किताब में इसका भी जिक्र करते हैं कि एवरेस्ट पर चढ़ने जैसे जोखिमभरे अभियान में दुनिया की दिलचस्पी क्यों बनी हुई है और यह वक्त के साथ बढ़ती भी गई है। मनोविज्ञानियों के हवाले से वह बताते हैं कि अव्वल तो लोग इसे एक टेस्ट की तरह लेते हैं। वे जानना चाहते हैं कि क्या शारीरिक और मानसिक रूप से मुश्किल इस काम को वे कर पाएंगे? दूसरी बात यह है कि जोखिम वाले अभियान करने से इंसान को लगता है कि वह एक तरह से मृत्यु को परास्त कर रहा है या उसे नकार रहा है। विल का कहना है कि इसी वजह से जिस किसी साल में एवरेस्ट पर चढ़ने के सिलसिले में मौतों की संख्या बढ़ती है, उसके अगले साल अभियान में शामिल होने वाले पर्वतारोहियों की संख्या बढ़ जाती है। इस गाइडिंग इंडस्ट्री का कारण डिक बास नाम के शख्स हैं। उनके पूर्वजों ने तेल के धंधे में काफी पैसा बनाया था। वह सातों महादेशों की सबसे ऊंची चोटियों पर चढ़ना चाहते थे। वह पैसों के जोर पर एवरेस्ट के लिए तीन अभियानों में शामिल हुए और 1985 में 55 वर्ष की उम्र में एवरेस्ट तक पहुंचने वाले सबसे उम्रदराज शख्स बने। उन्हें पर्वतारोहण का तजुर्बा भी बहुत कम था। वह एक आम अमीर इंसान थे। विल बताते हैं कि डिक बास की इस कामयाबी की दुनिया भर के मीडिया में चर्चा हुई और कई कंपनियां वजूद में आईं, जो एवरेस्ट के लिए टूर आयोजित करने लगीं।

AI Image

विचार विंडो

1990 के दशक में ऐसे ज्यादातर अभियान सफल भी हुए। 1992-95 में 150 लोगों ने एवरेस्ट तक पहुंचने के लिए ऐसी कंपनियों की मदद ली और इनमें से एक तिहाई को कामयाबी भी मिली। 1990 के दशक के आखिर में कुछ ऐसे अभियान फेल भी हुए। इसके बाद इन गाइडिंग कंपनियों को लगा कि उनके बिजनेस पर बुरा असर पड़ेगा, लेकिन सचाई यह है कि एवरेस्ट का आकर्षण उसके बाद बढ़ता गया। आज पहले से कहीं ज्यादा लोग शिखर तक पहुंच रहे हैं, लेकिन रास्ते में होने वाली मौतों की संख्या भी बढ़ रही है। 2023 में 18 लोगों की इस तरह मौत हो गई, जो अब तक की सबसे बड़ी संख्या है। विल लिखते हैं कि गाइडिंग कंपनियों के एक्सपर्ट्स जानते हैं कि एवरेस्ट तक पहुंचने के लिए क्या करना पड़ता है, लेकिन इसका मतलब यह नहीं है कि उस तक पहुंचने के जोखिम खत्म हो गए हैं।

ग़लती ने सिखाया

प्रणव प्रियदर्शी

करियर की जिस ऊंचाई पर अभी सुप्रभा मैसूर खड़ी हैं, वहां तक पहुंचने में उनके सधे अंदाज में रखे कामयाब कदमों की जितनी भूमिका है, उतना ही योगदान फिसले कदमों का भी है। कंप्यूटर साइंस में BE करने के बाद सुप्रभा ने नोकिया में सॉफ्टवेयर डिवेलपमेंट की फील्ड में महज तीन साल का अनुभव हासिल किया था, लेकिन आंट्रप्रेन्यरशिप के शौक ने मजबूर कर दिया। उन्होंने दिल की सुनी और साल 2007 में स्टार्टअप शुरू किया जो ई-कॉमर्स प्लैटफॉर्म्स की मदद के लिए मोबाइल सॉफ्टवेयर डिवेलप करने का वेंचर था। आइडिया बेहतरीन था, लेकिन शायद वक्त से कुछ पहले आ गया था। 18 महीने की मशक्कत के बाद सुप्रभा को अपना स्टार्टअप बंद करना पड़ा क्योंकि कोई ऐसा इन्वेस्टर नहीं मिला जो उनके प्रॉडक्ट को मार्केट तक ले जाने को तैयार हो। बहरहाल, इस नाकामी से सुप्रभा विचलित नहीं हुईं। वह 18 महीनों के अपने इस अनुभव की कीमत समझती थीं। उन्होंने दोबारा जॉब की तलाश शुरू की, लेकिन उनके सीवी में इस कथित नाकाम प्रयोग को प्रमुख स्थान मिल चुका था। एम्प्लॉयर्स ने भी इस अनुभव की अहमियत को समझा और टीम लीड करने की उनकी क्षमता पर भरोसा किया। जॉब की दूसरी पारी में अमेरिका की कंज्यूमर क्रेडिट रिपोर्टिंग एजेंसी ट्रांस यूनियन में वाइस प्रेसिडेंट (सॉफ्टवेयर डिवेलपमेंट) की मौजूदा भूमिका स्वीकार करने से पहले वह Cisco, Nokia और Intel में प्रॉडक्ट मैनेजमेंट रोल्स निभा चुकी थीं। इस पूरी यात्रा में अपना स्टार्टअप शुरू करने और बंद करने के बीच मिला अनुभव सुप्रभा के काम आता रहा। वह हर प्रॉडक्ट को सिर्फ क्रिएटर के नजरिए से नहीं, यूजर के नजरिए से भी देखने लगीं। दूसरी जो चीज उन्हें उतार-चढ़ाव भरी अपनी करियर यात्रा में ताकत देती रही वह है उनकी क्रिएटिविटी। सुप्रभा ने कर्नाटक म्यूजिक में बाकायदा प्रशिक्षण लिया है और वह पियानो भी बजाती हैं। इसके साथ ही वह शॉर्ट स्टोरीज भी लिखती हैं।

सुप्रभा मैसूर

आधी दुनिया

THE SPEAKING TREE

और पढ़ने के लिए देखें hindi.speakingtree.in

हमारे दिमाग़ पर अपना क़ब्ज़ा जमा रहा प्रोसेस्ड फूड

स्वामी अवधेशानंद गिरि

भोजन सिर्फ भूख मिटाने के लिए नहीं होता। यह जीवन के कई पहलुओं पर प्रभाव डालता है, जैसे मानसिक स्वास्थ्य, विचार क्षमता और भावनात्मक स्थिरता। शुद्ध सात्विक और प्राकृतिक आहार से श्रेष्ठ विचारों का प्रस्फुटन होता है। शुभ विचार जीवन की उन्नति और सफलता के लिए सकारात्मक तत्व हैं। उपनिषद में आता है कि हमारा आहार शुद्ध होगा, तो हमारी चेतना भी शुद्ध होगी। चेतना के अनुरूप ही हमारे विचार होते हैं, बुद्धि होती है, कार्य होते हैं और अंत में हम स्वयं भी वैसे ही बन जाते हैं। एक प्रसिद्ध कहावत भी है - जैसा खाए अन्न वैसा हो जाए मन। लेकिन आज के आधुनिक और व्यस्त समय में अक्सर हम आहार लेने से पहले उसके गुण-दोष पर विचार ही नहीं करते। हम यह देखते हैं कि मार्केट में नया फूड आइटम क्या आया, किसकी चर्चा ज्यादा है। प्राकृतिक यानी सीधे अन्न से बनने वाले व्यंजन के बदले प्रोसेस्ड फूड ने अपना कब्जा जमा लिया है। सेहत पर इनका बुरा असर पड़ रहा है।

गीता में तीन प्रकार के आहार के विषय में बताया गया है। पहला, जो सात्विक या श्रेष्ठ पुरुष को प्रिय होता है। यह वैसा आहार है जो आयु, बुद्धि, बल, आरोग्य, सुख और प्रीति को बढ़ाने वाले रसों से युक्त होता है। ये आहार मन को प्रिय होते हैं। दूसरा, जो राजस या मध्यम पुरुष को प्रिय होता है, जैसे कड़वे, खट्टे, लवणयुक्त, बहुत गर्म, तीखे, रूखे, दाहकारक। ऐसे आहार चिंता और रोगों को उत्पन्न करने वाले होते हैं। तीसरा, तामसिक आहार जो अधपका, रसरहित, दुर्गंधयुक्त, बासी और उच्छिष्ट है। यह अपवित्र माना जाता है। भोजन के विषय में विचार करने पर हम पाएंगे कि सात्विक पुरुष खाने से पहले भोजन के पदार्थों के विषय में भली भांति विचार करता है कि ऐसा भोजन लेना चाहिए जिससे आयु और बल बढ़े, वह रोगी न बन जाए। बुद्धि सात्विक बने। राजस पुरुष कड़वे, खट्टे, तीखे, दाहकारक पदार्थ वाले भोजन को पहले ग्रहण करता है। इसके बाद वह विचार करता है कि इस भोजन से रोग उत्पन्न हो रहे हैं, चिंता और दुख बढ़ रहे हैं। लेकिन तामस पुरुष न तो भोजन लेने से पहले सोचता है और न ही बाद में उसके गुण-दोष पर विचार करता है। तामसिक पदार्थ लेने के कारण उसके अंदर आलस्य, निंद्रा का बढ़ना, हिंसा, कर्मों में मन का न लगना आदि अवगुण बढ़ते जाते हैं। सतगुण से ज्ञान उत्पन्न होता है। रजोगुण से लोभ और तमोगुण से प्रमाद, मोह और अज्ञान उत्पन्न होते हैं।

आहार हमारी मनोवृत्तियों को भी प्रभावित करता है। इसलिए आहार, विहार और विचार के प्रति सजग रहना चाहिए। आहार शुद्धि जीवन सिद्धि का मूल है। हम कुछ और नहीं, अपने द्वारा बोई हुई फसल का उत्पादन हैं। जैसा विचार बीज मस्तिष्क रूपी भूमि में बोया जाएगा वैसा ही जीवन बनेगा। जिस प्रकार वृक्ष के उगने के लिए बीज अनिवार्य है, उसी प्रकार हर कार्य के मूल में भी एक बीज होता है और वह है विचार। जैसा बीज वैसा पौधा तथा जैसा विचार वैसा कर्म। विचार बीज की तरह से है।

प्रस्तुति : सुभाष चंद्र शर्मा

रीडर्स मेल www.edit.nbt.in

■ चुप्पी भी है तरीका

'जीवन आनंद' कॉलम में 22 जुलाई का लेख 'जो हो रहा है उसे स्वीकार करिए, मजे में रहेंगे' पढ़ा। किसी बात को स्वीकार करना आत्मसमर्पण नहीं होता, बल्कि यह समझदारी और विनम्रता दिखाता है। इससे अहंकार कम होता है और जीवन में संतोष मिलता है। कई बार ऐसे लोग भी मिल जाते हैं, जिनकी बातों से अहसमति होती है। ऐसे में अपनी स्थिति और विचार को स्पष्ट रूप से पेश करना ही बेहतर रहता है। विरोध करते समय आदरपूर्ण भाषा का उपयोग करना चाहिए ताकि संवाद सकारात्मक और प्रभावी रहे। कई बार चुप्पी साध लेना भी अच्छा तरीका है।

निशा रावत, ईमेल से

■ हालात से समझौता

यह पत्र 22 जुलाई के लेख 'जो हो रहा है उसे स्वीकार करिए, मजे में रहेंगे' से संबंधित है। लेख में जीवन की सचाई और परिस्थितियों को स्वीकार करने की सलाह दी जाती है। जब हम वर्तमान स्थिति को स्वीकार करते हैं, तो हम खुद को निरंतर संघर्ष और असंतोष से मुक्त कर लेते हैं। यह स्वीकृति हमें बेहतर तरीके से समस्या का सामना करने की ताकत भी प्रदान करती है। हालात को खुले मन से स्वीकार करना भी एक कला है।

धर्मेंद्र ठाकुर, गाजियाबाद

जीवन आनंद

■ ख़ुद को व्यस्त रखें

कई बार कुछ बातों को लेकर मन दुखी हो जाता है। ऐसे में किसी ऐसे उपाय की जरूरत महसूस होती है जो तनाव और बेचैनी को कम कर सके। मेडिटेशन करने की सलाह दी जाती है, जो मददगार साबित होता है। नियमित शारीरिक गतिविधि, जैसे कि एरोबिक एक्सरसाइज, न केवल शरीर को फिट रखती है बल्कि मानसिक स्वास्थ्य में भी सुधार करती है। व्यायाम एंडोर्फिन्स रिलीज करता है, जो मूड को बेहतर बना सकते हैं। खुद को व्यस्त कर लें जिससे कुछ समय के लिए आपका ध्यान उधर से भटक जाए।

सत्यवीर गुप्ता, रोहिणी

nbtedit@timesgroup.com पर अपनी राय नाम-पते के साथ मेल करें।

अंतिम पत्र

सस्ती होने लगीं सब्जियां, टमाटर-सिमला मिर्च के दाम गिरे - खबर - बजट के बाद 'किचन किंग' के तेवर में आई है नरमी!

प्रियंका श्रीवास्तव

आर.एन.आई. नं. 510/57© सर्वाधिकार सुरक्षित। लिखित अनुमति के बिना संपूर्ण या आंशिक पुनर्प्रकाशन पूर्णतः प्रतिबंधित। स्वत्वाधिकारी बैनेट, कोलमैन एण्ड कम्पनी लिमिटेड के लिए राजीव यादव द्वारा, 7 बहादुरशाह जफर मार्ग, नई दिल्ली-110002 से प्रकाशित तथा **टाइम्स ऑफ इंडिया प्रेस, साइट IV, औद्योगिक क्षेत्र साहिबाबाद** और प्लॉट नंबर 7-8, सेक्टर M-11, ट्रांसपोर्ट हब, इंडस्ट्रियल मॉडल टाउनशिप, मानेसर, हरियाणा से मुद्रित। फोन : 23302000 फैक्स: 23492047, पंजीकृत कार्यालय : दादाभाई नौरोजी रोड, मुंबई-400001। विमान सेवा शुल्क : 1 रु. प्रति कॉपी। नेपाल में कुल मूल्य : सोमवार से शनिवार : नेपाली 5 रु. ; रविवार : नेपाली 6 रु.
संपादक (दिल्ली मार्केट) : आशीष पांडे (इस अंक में प्रकाशित समस्त समाचारों के चयन एवं संपादन हेतु पी.आर.बी. एक्ट के अन्तर्गत उत्तरदायी)